दक्षिण भारत प्रवचन

(कोयंबत्तुर)

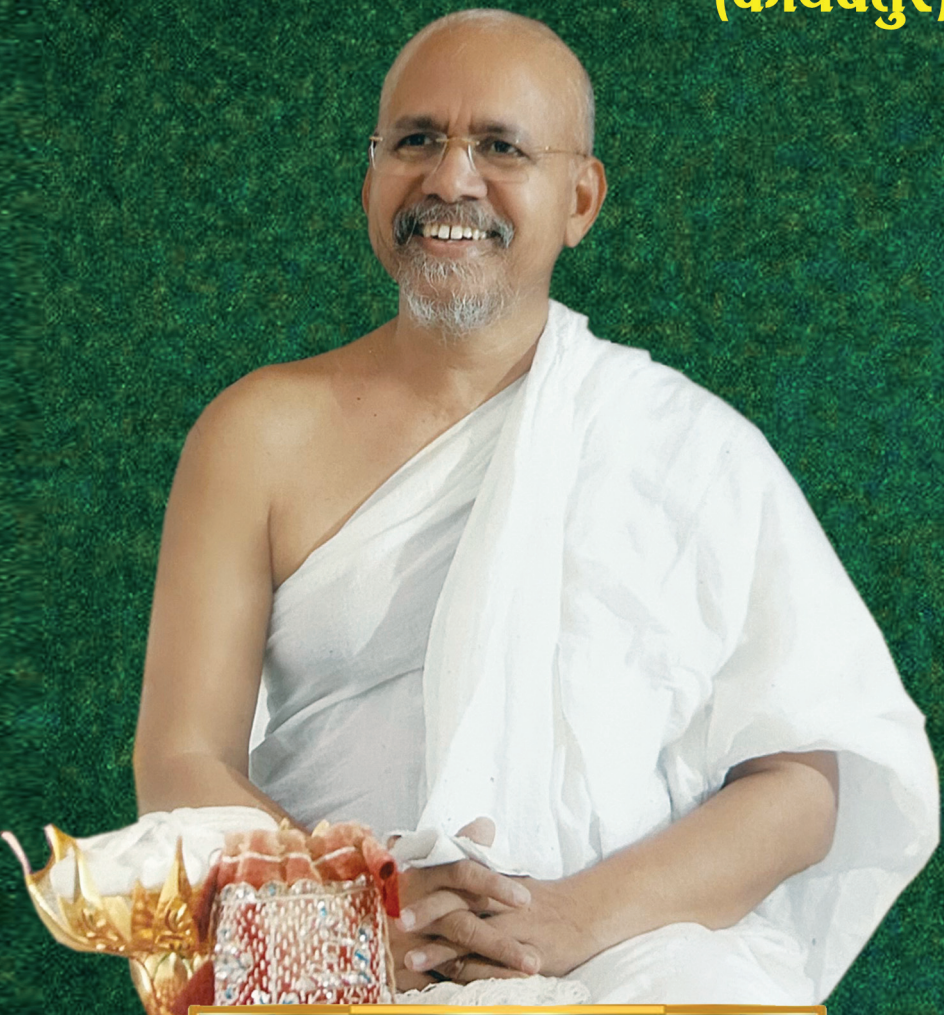

-: प्रवचनकार :-

पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

दक्षिण भारत प्रवचन
(कोयंबत्तुर)

卐 **प्रवचनकार** 卐

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति, पूज्यपाद
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी महाराजा के
शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान योगी निःस्पृह शिरोमणि
भावाचार्य तुल्य पूज्यपाद पंन्यास प्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्यपाद
आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

卐 **अवतरणकार** 卐

पूज्य मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.

245

卐 **प्रकाशन** 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट,
कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 8484848451 (only whatsapp)

हिन्दी आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 160/- रुपये • **प्रतियाँ :** 1500
विमोचन तिथि : असाढ वदी-14, वि.सं. 2080, दि. 04-08-2024
विमोचन स्थल : पोसालिया, (जिला-सिरोही) राज.
Website : Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

वि.सं. 2075 ईस्वी सन् 2019 में मरुधररत्न, गोड़वाड के गौरव, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय *रत्नसेनसूरीश्वरजी* म.सा.** आदि-5 ठाणा तथा पू.सा. श्री **उज्जवलज्योतिश्रीजी** आदि-2 ठाणा एवं पू.सा. श्री **उद्योतदर्शनाश्रीजी म.** आदि-7 ठाणा का बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट आर.एस.पुरम के तत्त्वावधान में प्रथम बार ही चातुर्मास हुआ था, इस चातुर्मास के मुख्य लाभार्थी सादडी (राज.) निवासी श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी बाफना परिवार थे। इस चातुर्मास में आयोजक परिवार ने खूब उदारता से अपनी लक्ष्मी का सद्व्यय किया था।

प्रभावक प्रवचनकार पूज्य आचार्य भगवन्त के हिन्दी भाषा में प्रेरणादायी प्रवचनों से संघ में खूब जागृति आई थी।

चातुर्मास दरम्यान अनेकविध सामुदायिक तप अनुष्ठान संपन्न हुए थे। चातुर्मास आराधना के शिखर रुप कोयंबत्तुर से अव्वलपुंदरी का दस दिवसीय छ'री पालन यात्रा संघ था।

कोयंबत्तुर प्रवेश से लेकर पर्वाधिराज पर्युषण तक के प्रवचनों का आंशिक अवतरण **''कोयंबत्तुर प्रवचन''** में छपा था और उसके बाद से लेकर कोयंबत्तुर स्थिरता तक के प्रवचनों का सारभूत अवतरण प्रस्तुत पुस्तक में छपा है।

प्रवचनों के आंशिक अवतरण प्रतिदिन कोयंबत्तुर से प्रकाशित **'दैनिक अखबार'** राजस्थान-पत्रिका एवं **'दक्षिण भारत-राष्ट्रमत'** में नियमित छपे थे।

प्रवचनों का आंशिक अवतरण पू.मु.श्री स्थूलभद्रविजयजी म. ने किया है। इन प्रवचनों के अवतरण में रही भाषाकीय अशुद्धिओं का परिमार्जन पू. आचार्य भगवन्त ने स्वयं किया है।

हमें आशा ही नहीं किंतु पूर्ण विश्वास हैं कि प्रवचनों के इस सारभूत अवतरणों से सुंदर प्रेरणा प्राप्त होगी।

प्रवचन प्रभावक मरुधररत्न-हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का बहुरंगी-वैविध्यपूर्ण साहित्य

S.No.	तत्त्वज्ञान विषयक	Book No.
1.	जैन विज्ञान	38
2.	आओ ! तत्त्वज्ञान सीखें	79
3.	चौदह गुणस्थान	96
4.	जीव विचार विवेचन	123
5.	नव तत्त्व-विवेचन	122
6.	दंडक-विवेचन	135
7.	लघु संग्रहणी (जैन भूगोल)	194
8.	तीन-भाष्य	127
9.	पहला कर्मग्रंथ	102
10.	दूसरा कर्मग्रंथ	196
11.	तीसरा कर्मग्रंथ	243
12.	चौथा कर्मग्रंथ	197
13.	पाँचवाँ कर्मग्रंथ	204
14.	छठा-कर्मग्रंथ	205
15.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	229
16.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	230

S.No.	शत्रुंजय-गिरनार साहित्य	Book No.
1.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	89
2.	शत्रुंजय यात्रा	36
3.	तीर्थ यात्रा	159

S.No.	सद्गुण विवेचन साहित्य	Book No.
1.	मानवता तब महक उठेगी	8
2.	मानवता के दीप जलाएं	9
3.	श्रावक का गुण सौंदर्य	53
4.	नींव के पत्थर	116
5.	गुणवान बनो	126
6.	सुखी जीवन की चाबियाँ	137
7.	मोक्ष-मार्ग के कदम	209

S.No.	आगम साहित्य	Book No.
1.	45 आगम-परिचय	239

S.No.	प्रवचन साहित्य	Book No.
1.	आनन्द की शोध	33
2.	प्रवचनधारा	67
3.	प्रवचन मोती	72
4.	प्रवचन रत्न	78
5.	संतोषी नर-सदा सुखी	87
6.	प्रवचन के बिखरे फूल	103
7.	जैन पर्व-प्रवचन	115
8.	पांच प्रवचन	138
9.	गुणानुवाद	141
10.	जीवन शणगार प्रवचन	148
11.	प्रवचन-वर्षा	199
12.	प्रेरक-प्रवचन	203
13.	चिंतन का अमृत-कुंभ	214
14.	सुखी जीवन के Mile-Stone	219
15.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	225
16.	मन के जीते जीत है	235
17.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	244
18.	दक्षिण भारत प्रवचन (कोयंबत्तुर)	245

S.No.	धारावाहिक कहानी	Book No.
1.	कर्मन् की गत न्यारी	6
2.	जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है	10
3.	तब आंसु भी मोती बन जाते है	24
4-5.	आग और पानी भाग-1-2	34-35
6.	गौतम स्वामी-जंबूस्वामी	46
7.	कर्म को नहीं शर्म	49
8.	तेजस्वी सितारे	58
9.	श्रीपाल मयणा	65
10.	कर्म नचाए नाच	76

S.No.	छोटी छोटी कहानियां	Book No.
1.	प्रिय कहानियाँ	43
2.	मनोहर कहानियाँ	50
3.	ऐतिहासिक कहानियाँ	57
4.	प्रेरक-कहानियाँ	91
5.	मधुर कहानियाँ	98
6.	सरस कहानियाँ	111
7.	सरल कहानियाँ	142
8.	आदर्श कहानियाँ	198
9.	प्रेरक प्रसंग	162

S.No.	विधि-विधान उपयोगी	Book No.
1.	आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
2.	Chaitya-Vandan Sootra	52
3.	विविध-देववंदन	55
4.	Panch Pratikraman Sootra	61
5.	आओ ! पौषध करें	71
6.	आओ ! उपधान-पौषध करें	109
7.	विविध-तपमाला	128
8.	आओ ! भावयात्रा करें भाग-1	130
9.	आओ ! भावयात्रा करें भाग-2	166
10.	जैन संघ-व्यवस्था	187
11.	नित्य देव वंदन	240

S.No.	पू.पंन्यासजी म.का साहित्य	Book No.
1.	अमर-वाणी	101
2.	आध्यात्मिक पत्र	146
3.	परम-तत्व की साधना भाग-1	171
4.	परम-तत्व की साधना भाग-2	178
5.	परम-तत्व की साधना भाग-3	179
6.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-1	183
7.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-2	186
8.	आत्म-उत्थान का मार्ग भाग-3	193

S.No.	अन्य प्रेरक साहित्य	Book No.
1.	मिच्छामि दुक्कडम्	60
2.	चिंतन रत्न	114
3.	जैन शब्द कोश	157
4.	संस्मरण	190
5.	विवेकी बनों !	192
6.	अमृत रस का प्याला	200
7.	धर्म-बीज	238

S.No.	वैराग्यपोषक साहित्य	Book No.
1-2.	शांत सुधारस-हिन्दी-भाग-1-भाग-2	13-14
3.	मृत्यु की मंगल यात्रा	16
4.	मृत्यु-महोत्सव	51
5.	चिंतन-मोती	90
6.	सद्गुरु-उपासना	113
7.	भव आलोचना	124
8.	वैराग्य शतक	140
9.	सुख की खोज	143
10.	इन्द्रिय पराजय शतक	156
11.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	191
12.	समाधि-मृत्यु	195
13.	वैराग्य-वाणी	232

S.No.	गुजराती साहित्य	Book No.
1.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	25
2.	हंस श्राद्धव्रत दीपिका	48
3.	जीवन ने तुं जीवी जाण	62
4.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	63

S.No.	प्रभु भक्ति प्रधान साहित्य	Book No.
1.	आनंदघन चोबीसी	7
2.	भक्ति से मुक्ति	41
3.	प्रभु दर्शन सुख संपदा	84
4.	आओ ! पूजा पढाएं	88
5.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो !	110
6.	विविध पूजाएं	125
7.	मंगल स्मरण	131
8.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	228
9.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	231

S.No.	चरित्र-कथाएं	Book No.
1.	महासतियों का जीवन संदेश	93
2.	महान् चरित्र	129
3.	प्रात:स्मरणीय महापुरुष-1	149
4.	प्रात:स्मरणीय महापुरुष-2	150
5.	प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-1	151
6.	प्रात:स्मरणीय महासतियाँ-2	152

S.No.	युवा-युवति प्रेरक	Book No.
1.	युवानो ! जागो	12
2.	जीवन की मंगल यात्रा	17
3.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	20
4.	युवा संदेश	26
5.	अमृत की बूंदें	64
6.	माता-पिता	77
7.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	80
8.	आहार: क्यों और कैसे ?	82
9.	ब्रह्मचर्य	106
10.	व्यसन मुक्ति	211

S.No.	अंग्रेजी साहित्य	Book No.
1.	The Light of Humanity	21
2.	The Message for the Youth	31
3.	How to live true life ?	40
4.	Duties towards Parents	95
5.	Youth will Shine then	121
6.	The Way of Metaphysical Life	163
7.	Pearls of Preaching	167
8.	My Parents	175
9.	Celibacy	206
10.	New Message for a New Day	213

S.No.	मराठी साहित्य	Book No.
1.	आई वडीलांचे उपकार	92
2.	राग म्हणजे आग (मराठी)	108
3.	विखुरलेले प्रवचन मोती	117
4.	अध्यात्माचा सुगंध	155
5.	आई चे वात्सल्य	185

S.No.	अनुवाद-विवेचनात्मक	Book No.
1.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	11
2.	अंखिया प्रभुदर्शन की प्यासी	22
3.	श्रीमद् आनंदघनजी पद विवेचन	94

S.No.	महावीर प्रभु एवं पाट परंपरा	Book No.
1.	भगवान महावीर	70
2.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	81
3.	भगवान महावीर सचित्र जीवन	83
4.	महान् ज्योतिर्धर	86
5.	महावीर वाणी	112
6.	श्रमण शिल्पी	119
7.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	184
8.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा-1	220
9.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा-2	221
10.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा-3	222
11.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा-4	223
12.	जीवन झांकी	234

S.No.	प्रतिक्रमण-विवेचन साहित्य	Book No.
1.	सामायिक सूत्र विवेचना	2
2.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	3
3.	आलोचना सूत्र विवेचना	4
4.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचना	5
5.	आओ ! प्रतिक्रमण करें	42
6.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	73
7.	पंच प्रतिक्रमण विवेचन भाग-1	107

8.	पंच प्रतिक्रमण विवेचन भाग-2	120
9.	गुणवान बनो !	126
10.	पंच प्रतिक्रमण विवेचन भाग-3	132
11.	पंच प्रतिक्रमण विवेचन भाग-4	133
12.	सज्झायो का स्वाध्याय	139
13.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	208

S.No.	प्रश्नोत्तरी साहित्य	Book No.
1.	सवाल आपके जवाब हमारे	37
2.	शंका समाधान-भाग-1	66
3.	शंका समाधान-भाग-2	118
4.	शंका समाधान-भाग-3	147
5.	शंका समाधान-भाग-4	210
6.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	241
7.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	242

S.No.	63 शलाका पुरुष साहित्य	Book No.
1.	जैन महाभारत	18-19
2.	जैन रामायण	27-28
3.	पारस प्यारो लागे	99
4.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	105
5.	चौबीस तीर्थंकर भाग-1	188
6.	चौबीस तीर्थंकर भाग-2	189
7.	बारह चक्रवर्ती	202
8.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	215

S.No.	श्रावक जीवन साहित्य	Book No.
1.	श्रावक जीवन दर्शन (श्राद्धविधि)	29
2.	आओ ! श्रावक बने	45
3.	श्रावक कर्त्तव्य भाग-1	74
4.	श्रावक कर्त्तव्य भाग-2	75
5.	भाव श्रावक	85
6.	श्रावक आचार दर्शक (धर्मसंग्रह)	154
7.	श्रावकाचार प्रवचन भाग-1	176
8.	श्रावकाचार प्रवचन भाग-2	177

S.No.	ध्यान विषयक साहित्य	Book No.
1.	ध्यान साधना	153
2.	आओ ! दुर्ध्यान छोडे भाग-1	169
3.	आओ ! दुर्ध्यान छोडे भाग-2	170

S.No.	पू.पं.भद्रंकरविजयजी म.सा. चरित्र साहित्य	Book No.
1.	वात्सल्य के महासागर	1
2.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	15
3.	अध्यात्मयोगी गुरुदेव	44
4.	बीसवी सदी के योगी	100
5.	अजात शत्रु अणगार	161
6.	महान योगी पुरुष	201

S.No.	नवपद ओली साहित्य	Book No.
1.	नवपद प्रवचन	56
2.	श्रीपाल मयणा	65
3.	श्रीपाल रास एवं जीवन	134
4.	नवपद आराधना	182

S.No.	नवकार साहित्य	Book No.
1.	महामंत्र की साधना	160
2.	नवकार चिंतन	168
3.	मंत्राधिराज प्रवचनसार	207
4.	अचिंत्य चिंतामणि श्री नवकार भाग-1	216
5.	अचिंत्य चिंतामणि श्री नवकार भाग-2	217
6.	श्री नमस्कार महामंत्र	226
7.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएं	227
8.	नमस्कार मीमांसा	236
9.	परमेष्ठि नमस्कार	237

S.No.	पर्युषण साहित्य	Book No.
1.	अष्टाह्निक प्रवचन	97
2.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	104
3.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	136
4.	गणधर-संवाद	212
5.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	73

S.No.	भाषा साहित्य	Book No.
1.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	144
2.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	145
3.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	164
4.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	165

S.No.	विशेषांक साहित्य	Book No.
1.	युवा चेतना विशेषांक	23
2.	जीवन निर्माण विशेषांक	30
3.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	32
4.	आहार विज्ञान विशेषांक	39
5.	जैनाचार विशेषांक	47
6.	श्रमणाचार विशेषांक	54
7.	सन्नारी विशेषांक	59
8.	धरती तीरथ'री	68
9.	बाली चातुर्मास विशेषांक	180
10.	उपधान स्मृति विशेषांक	181
11.	दीक्षा विशेषांक	224

S.No.	केलेंडर	Book No.
1.	नया दिन-नया संदेश	158
2.	New Message for a New Day	213
3.	रत्न संदेश भाग-I	172
4.	रत्न संदेश भाग-II	174

अनुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृ.नं.	क्र.	विषय	पृ.नं.
1.	तप का फल मोक्ष है	1	29.	ईर्ष्यालु अन्य का विकास नहीं देख सकता	53
2.	शक्तियों पर विवेक का अंकुश जरूरी है	2	30.	सतत पुरुषार्थ जरूरी है	55
3.	धर्म की आराधना से सफल होता है मनुष्य जन्म	3	31.	संपूर्ण धर्म की आराधना मनुष्य-जन्म में ही संभव है	57
4.	सभी संसारी जीव कर्म की जेल में कैदी हैं	4	32.	हृदय कमल में करें नवपदों का ध्यान	59
5.	धर्म की शुरुआत परमार्थ वृत्ति से होती है	5	33.	दुर्गति से रक्षण करे वह धर्म	61
6.	आत्मा और देह सर्वथा भिन्न हैं	7	34.	गुरु-आज्ञा पालन से मोक्षप्राप्ति है	63
7.	प्रभु से प्रार्थना	9	35.	आत्मा के शत्रुओं पर विजय दिलाती है साधु पद की आराधना	64
8.	श्रावक-जीवन की महिमा	11			
9.	मुक्ति की दूती प्रभुभक्ति	13	36.	धर्मी आत्मा के केन्द्र में आत्मा होती है	66
10.	प्रभु भक्ति की शक्ति	15	37.	आत्मा का गुण है ज्ञान	68
11.	स्वाद-विजय का श्रेष्ठ उपाय आयंबिल है	17	38.	भवभ्रमण का अंत लाता है चारित्र धर्म	70
12.	विनय की महत्ता	19			
13.	क्रोध खतरनाक है	21	39.	शत्रुंजय के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं	72
14.	हे प्रभो! आप सर्वगुणसम्पन्न हो	23			
15.	प्रभु ही शरण है	25	40.	आत्महित के लिए आवश्यक है आराधना	74
16.	माया छोड़े सरल बनें	27			
17.	उपकारी के उपकार को न भूलो	29	41.	चार प्रकार के धर्म से चार संज्ञाओं का नाश	76
18.	ममत्व ही कर्मबन्ध का कारण है	31			
19.	आहार क्यों और कैसे ?	33	42.	दुश्मनावट की समाप्ति का आनंद दीर्घजीवी है	78
20.	मन को समता भाव में जोड़ दो	35			
21.	अपना स्वभाव अच्छा बनाएँ	37	43.	आसक्ति तोड़ने के लिए उपवास आदि तप हैं	80
22.	मन कभी थकता नहीं है	39			
23.	मानव शरीर अशुचि से भरा है	41	44.	जीवन में अंकुश जरुरी है	82
24.	प्रमाद छोड़ें	43	45.	माया छोड़ो: सरल बनो !	84
25.	मोह खतरनाक है	45	46.	सद्गुरु का उपकार	86
26.	मन के जीते जीत है ।	47	47.	दीपावली पर्व की महिमा	88
27.	कायोत्सर्ग की साधना	49	48.	संसार असार है	90
28.	परमात्म-भक्ति	51	49.	प्रभु महावीर की अंतिम देशना	92

क्र.	विषय	पृ.नं.	क्र.	विषय	पृ.नं.
50.	प्रभु महावीर का निर्वाण कल्याणक दीपावली पर्व	94	73.	आधुनिक जीवन-शैली धर्म में बाधक है	138
51.	गुलाम बनी आत्मा संसार में भटकती है	96	74.	आत्मा के रोगों से भी हमें शरीर के रोगों की खूब चिन्ता है	140
52.	नूतन वर्ष मंगलमय हो	98	75.	जो धर्म की साधना करे, वह समझदार	142
53.	तीर्थयात्रा की महिमा	100	76.	आँख खुलते ही नवकार महामंत्र का स्मरण करना चाहिए	144
54.	श्रावक जीवन की महत्ता	102	77.	समस्त श्रुतज्ञान का सार है-नवकार महामंत्र	146
55.	ज्ञान पंचमी अर्थात् ज्ञान की महत्ता	104	78.	हमारा मन पानी जैसा है	148
56.	विरति धर्म का बंधन भव-भ्रमण के बंधनों से मुक्ति दिलाता है	106	79.	ध्वजारोहण की महिमा	150
57.	श्रावक जीवन की आचार संहिता	108	80.	अचिन्त्य चिन्तामणि है-नमस्कार महामंत्र	152
58.	गृहस्थजीवन में कदम-कदम पर हिंसा है	110	81.	अभाव की प्राप्ति में दुनिया सुख मानती है	154
59.	दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है	112	82.	सर्वश्रेष्ठ और सारभूत श्री नवकार महामंत्र	156
60.	श्रेयांसनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा	114	83.	भव-भ्रमण का अंत करे वह तीर्थयात्रा	158
61.	तीर्थ यात्रा की महिमा	115	84.	श्रावक-जीवन में तीर्थ यात्रा की प्रधानता है	160
62.	कषाय भयंकर हैं	117	85.	छ'री पालक संघ	162
63.	शत्रुंजय के ध्यान से आत्मा की उन्नति	119	86.	सामूहिक तीर्थयात्रा से होती है विशेष भावों की वृद्धि	164
64.	पार्श्वनाथ प्रभु की आराधना	121	87.	धर्म में थोड़ी भी पीड़ा सहन करने से बड़ी लाभदायी	166
65.	तप का उद्देश्य	123	88.	सद्गुरु भवसागर से पार उतारकर मुक्तिनगर ले जाते हैं	168
66.	आहार के तीन प्रकार	125	89.	धर्मदेशना द्वारा अरिहंत परमात्मा सबसे बड़ा उपकार करते हैं	170
67.	चातुर्मास की सफलता	127	90.	परिशिष्ट-1	172
68.	परमात्मा का उपकार सबसे बडा है	128			
69.	परमात्मा की आज्ञापालन ही उनकी सच्ची पूजा	130			
70.	भाव धर्म की महत्ता	132			
71.	मानवता के दीप जलाएँ	134			
72.	भगवान महावीर का दीक्षा कल्याणक	136			

1 तप का फल मोक्ष है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 03-09-2019**

जिनाज्ञा के अनुसार तप धर्म की आराधना करने से विघ्नों की परंपरा नष्ट हो जाती है । तप के प्रभाव से देवता भी वश हो जाते हैं और वे भी तपस्वी का सान्निध्य करते हैं ।

अंतरंग शत्रु स्वरूप काम-क्रोध आदि के लिए परम शत्रु है । तप धर्म । तीव्र तप से कामवासना भी शांत हो जाती है । तप से इन्द्रियाँ भी वश में आ जाती हैं तथा अनेक प्रकार की लब्धियाँ पैदा होती हैं ।

तप के प्रभाव से सभी कर्म जलकर भस्मीभूत हो जाते हैं । तप रूपी वृक्ष का मूल संतोष है, उपशम भाव स्कंध है, इन्द्रियों का निग्रह डालियाँ है, स्वर्ग की प्राप्ति फूल है तथा मोक्ष की प्राप्ति फल है ।

तप तो वज्र समान है, जो कर्म रूपी पर्वत को चूर-चूर कर देता है । इस तप धर्म को अग्नि के समान बताया है । जिस प्रकार खान में से निकला हुआ मलिन स्वर्ण, तेज आग में तपाने के बाद शुद्ध हो जाता है, उसी प्रकार कर्म से मलिन बनी आत्मा तप रूपी अग्नि के ताप से शुद्ध हो जाती है ।

खटका

पांव में एक छोटा सा कांटा लग जाता हैं और मन में उसका खटका रहता है ।
आंख में घास का एक तिनका गिर जाता है और आंख खटकने लगती है परंतु आश्चर्य है, जीवन में ढेर सारे पापों का आचरण होने पर भी वे पाप मन में खटकते नहीं हैं । पाप का अफसोस ही पाप को साफ करने का श्रेष्ठ साधन है ।

2 शक्तियों पर विवेक का अंकुश जरूरी है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 04-09-2019**

`आग जीवन देती है और जीवन लेती भी है । नियंत्रण (Control) में रही रसोड़े की आग जीवन देती है, जबकि अनियंत्रित (uncontrolled) आग माल और जान को भारी नुकसान करती है ।

पानी अपने जीवन का आधार है और मर्यादा बाहर नदी में बाढ़ के रूप में पानी आ जाय तो जीवन लेता भी है ।

मोरबी में मच्छू डेम टूटने पर आई बाढ़ से हजारों लोगों की मृत्यु हो गई थी और हजारों लोग बेघरबार हो गए थें ।

मर्यादा में रही हवा **'प्राण वायु'** का काम करती है, वह हमें जीवन देती है और वही हवा जब आँधी और तूफान के रूप में बहने लग जाती है तो भयंकर विनाश का कारण बन जाती है । इसी प्रकार युवा अवस्था में शक्तियों का उत्थान होता है । बौद्धिक शक्ति भी बढ़ जाती है परन्तु उन शक्तियों पर विवेक का अंकुश न हो तो ये अंतरंग शत्रु आत्मा को तबाह कर देते हैं ।

अल्प भोजन : अल्प परिग्रह

जो व्यक्ति भूख से कम भोजन करता हैं,
उसका पेट हल्का रहता हैं, भोजन जल्दी पचता है
और आदमी स्वस्थ रह सकता है ।
बस, इसी प्रकार जिस व्यक्ति का
परिग्रह कम होगा, वह ज्यादा सुखी रह सकेगा ।
आश्चर्य है, आदमी भोजन कम चाहता है,
परंतु परिग्रह खूब बढाना चाहता है ।
फिर भी सुखी होना चाहता है ।

3 धर्म की आराधना से सफल होता है मनुष्य जन्म

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 05-09-2019**

इस विराट विश्व में आत्मा का भवभ्रमण अत्यंत ही दुःखदायी है। जब तक आत्मा का मोक्ष नहीं होता है तब तक मनुष्य, देव, तिर्यंच और नरक गतियों में जीवात्मा, सुख की चाह में मात्र दुःख को ही प्राप्त करती है। उसमें भी मनुष्य-जन्म अत्यंत ही कीमती है। मनुष्य का जन्म, जीवन और मरण दुःखदायी होने पर भी दर्शन, ज्ञान और चारित्र स्वरुप रत्नत्रयी की आराधना से समस्त दुःखों का क्षय कर आत्मा मुक्तिपद प्राप्त कर सकती है।

जिनके जीवन में रत्नत्रयी की आराधना नहीं है, वे आत्माएँ देवों को भी दुर्लभ ऐसे मनुष्य-जीवन को प्राप्त करके भी अधोगति में चली जाती हैं। पशु अपने पूरे जीवन में हिंसा करता रहे, फिर भी उस पशु का अधःपतन थोडा होता है जबकि धर्मरहित मनुष्य का पतन अधिक होता है।

जिस प्रकार जीवन में युवावस्था का महत्त्व है, वैसे ही वर्ष भर में चातुर्मास महत्त्वपूर्ण है। चातुर्मास में भी पर्युषण पर्व के निमित्त विविध तपश्चर्याएँ होती हैं। बालक को इनाम की इच्छा व बडों को नाम की इच्छा होती है, परंतु धर्मी आत्मा को तो अनामी सिद्ध पद की ही इच्छा होती है।

तप करने वाले तो धन्य हैं ही, तप धर्म करने में सहायक बनने वाले एवं तप धर्म की अनुमोदना करने वाले भी धन्य हैं। जो सच्चे हृदय से तप धर्म की आराधना करनेवालों की अनुमोदना करते हैं, वे अपने तप धर्म के अंतरायों का क्षय करते हैं।

4 सभी संसारी जीव कर्म की जेल में कैदी हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 06-09-2019**

आत्मा का शुद्ध स्वरूप अविनाशी है । अविनाशी ऐसी आत्मा कभी किसी भी शस्त्र से कटती नहीं, अग्नि से जलती नहीं या पानी से बहती नहीं । जिसने आत्मा के शुद्ध एवं अविनश्वर स्वरूप को जान लिया, उसे दुनिया में किसी से किसी भी प्रकार का भय नहीं रहता है ।

जिस प्रकार चोर लुटेरे घर में प्रवेश करते हैं, तब घर की संपत्ति का विनाश करते हैं, वैसे ही आत्मा रूपी घर में जब कर्मरूप लुटेरे प्रवेश करते हैं, तब वे आत्मा के शुद्ध स्वरूप गुणों को लूटकर आत्मा को कंगाल बना देते हैं ।

पूरे विश्व में रही सारी आत्माएँ कर्म की जेल में कैद है । कर्म के वश अजर, अमर और अविनाशी आत्मा को जन्म, जरा, मृत्यु, रोग, आधि, व्याधि और उपाधियों के कारण अनेक दुःखों को सहन करना पड़ता है ।

जगत् की विचित्रता में मुख्य कारण कर्म ही है । अपने-अपने शुभ-अशुभ कर्म के अनुसार ही इस जगत् में जीवात्मा को सुख-दुःख की प्राप्ति होती है ।

भोजन अन्य व्यक्ति करे और तृप्ति अन्य किसी को हो, यह नहीं हो सकता । बीमार अन्य व्यक्ति हो और दवाई कोई दूसरा ले, तो भी नहीं चलता है । इस प्रकार इस जगत् में शुभ अथवा अशुभ कर्म कोई अन्य व्यक्ति करे और शुभ अशुभ कर्म की सजा या इनाम अन्य किसी व्यक्ति को मिले यह कदापि संभव नहीं है ।

कर्म की कर्ता और कर्म की भोक्ता भी आत्मा ही है । पुरुषार्थ द्वारा कर्म का क्षय करके आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त कर सकती है ।

5 धर्म की शुरुआत परमार्थ वृत्ति से होती है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 07-09-2019**

अनादि काल से संसारी जीवों में स्वार्थवृत्ति रही हुई है । हर स्थान में अपने स्वार्थ को देखकर जहाँ अनुकूलता होती है, वही पसंद करती है । इसलिए हर व्यक्ति अपना स्थान हमेशा आगे रखना चाहता है ।

स्वार्थ वृत्ति से आत्मा का कभी विकास नहीं हो सकता है । धर्म की शुरुआत परमार्थ वृत्ति से होती है । जीवन में परमार्थ वृत्ति का विकास करने के लिए चार प्रकार के धर्मों में सबसे पहला दान धर्म बताया है ।

आर्य देश की संस्कृति में दानवृत्ति थी । घर में परिवार के लिए रोटी बनाते समय परिवार की महिलाएँ, गाय-कुत्ते आदि पशु के लिए रोटी बनाती थीं । यह भी दान का ही प्रतीक है ।

जब व्यक्ति उदार बनता है, तभी वह अपने सुख को छोड़कर अपने घर, अपने कुटुंब, अपने ग्रामवासी, अपने देशवासी या सारे विश्व के लोगों के सुख की चिंता कर सकता है ।

करुणा के सागर अरिहंत परमात्मा मात्र मनुष्य या देवों के सुख की नहीं बल्कि जगत् में रहे जीव मात्र के शाश्वत सुख की चिंता करते है, तीर्थंकर नाम कर्म के उदय से वे जगत् के जीवों को धर्म का मार्ग बताकर सबसे बड़ा उपकार करते हैं ।

भूखे को भोजन देने से उपकार होता है, परंतु 8-10 घंटों के बाद भूख की समस्या पुनः उपस्थित हो जाती है । प्यासे को पानी देने से उपकार होता है, परंतु 2-4 घंटों के बाद प्यास की समस्या पुनः खड़ी हो जाती है ।

कपड़े रहित को कपड़ा देने से उपकार होता है, परंतु वह कपड़ा भी 1-2 साल टिकता है, बाद में वही समस्या बनी रहती है ।

मकान रहित को मकान देने से भी उपकार होता है, परंतु वह मकान भी एक जन्म तक साथ दे सकता है । भाड़े के घर की तरह यह शरीर भी हमारे साथ तभी तक रहता है, जब तक पुण्य कर्म का भाडा चुकाया है । पुण्य के पूर्ण होने के साथ ही संसार के सारे संबंध पूरे हो जाते हैं ।

संसार में समस्याओं का समाधान मात्र अल्पकालीन है इसलिए वीतराग परमात्मा शाश्वतकालीन समस्याओं के समाधान के लिए मोक्ष का मार्ग बताते हैं ।

संसार के सभी संबंधी स्वार्थ के सगे हैं । स्वार्थ पूरा होने पर इस दुनिया में कोई किसी को याद नहीं करता है । धन की कमाई में हर कोई भागीदार बन जाते हैं, परंतु धन की कमाई में होने वाले पाप की कमाई में कोई भागीदार नहीं बनता है । अतः आत्मा के विकास का मार्ग बताने वाले तीर्थंकर भगवान के बताए मार्ग पर चलकर हमें अपनी पुण्य की कमाई कर लेनी चाहिए ।

धन की कमाई यहीं रह जाती है जबकि पुण्य की कमाई जन्म-जन्मों तक साथ में चलती है ।

विनय

आकाश का भूषण सूर्य है अर्थात् सूर्य से आकाश की शोभा बढती है । कमलवन का भूषण मधुकर है । वाणी का आभूषण सत्यवचन है । उसी प्रकार समस्त गुणों का भूषण विनय गुण है । जीवन में यदि विनय है तो अन्य सभी गुण शोभा देते हैं, परंतु विनय गुण नहीं है तो सब व्यर्थ है, अतः जीवन में सर्व प्रथम विनय गुण को आत्मसात् करने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये । *जिसके जीवन में विनय गुण नहीं हैं, उसके जीवन की कोई कीमत नहीं है ।*

6 आत्मा और देह सर्वथा भिन्न हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 08-09-2019**

आत्मा और देह सर्वथा भिन्न हैं । आत्मा के गुण-धर्म और देह के गुण धर्म अलग अलग हैं, परन्तु विवेक के अभाव में व्यक्ति देह में ही आत्मबुद्धि कर उसी के पालन-पोषण और संवर्धन में अपने जीवन का अमूल्य समय खो बैठता है ।

देह विनाशी है, आत्मा अविनाशी है ।

देह का सौंदर्य क्षणजीवी है, आत्मा का सौंदर्य शाश्वत है । देह मल-मूत्र व अशुचि का भंडार है, जबकि आत्मा अशुचि के तत्त्वों से सर्वथा मुक्त है । देह में आत्मबुद्धि रूपी अविवेक करके हम इस संसार में खूब भटके हैं । आवश्यकता है अब हमें विवेक रूपी चक्षु को प्रकट करने की ।

विवेक चक्षु पर आवरण दूर होगा तो हमारे दिल में देह के बदले आत्मा पर प्रेम बढ़ेगा ।

आँख में पीलिये का रोग पैदा हुआ हो तो उस रोगी को सफेद वस्तुएँ भी पीली दिखाई देती हैं, परन्तु ज्योंही वह रोग दूर हो जाता है, उसके साथ ही उसका भ्रम टूट जाता है, और उसे अपनी भूल पर पश्चात्ताप का भाव पैदा होता है ।

इसी प्रकार जब जीवन में विवेक रुपी अन्तरंग चक्षु उघड़ते हैं, उसके साथ ही कर्तव्य-अकर्तव्य आदि का भान हो जाता है और वह भान होने के साथ ही व्यक्ति अकर्तव्य को त्याग कर कर्तव्य के पालन के लिए प्रयत्नशील बने बिना नहीं रहता ।

जब तक आत्मा, अज्ञानता व मोह के जाल में फँसी होती है, तब तक आत्मा में विवेक रुपी नेत्र का उघाड़ नहीं हो पाता है ।

बालक के हाथ में हीरा दिया जाय तो वह उसे पत्थर समझकर फेंक देगा, क्योंकि उसे हीरे की कीमत का भान नहीं है, परन्तु आपको हीरे की कीमत का पता है तो आप उस हीरे के रक्षण के लिए कितना प्रयत्न करोगे ?

जीवन में विवेक आने के साथ ही व्यक्ति आत्मा के लिए अहितकारी प्रवृत्तियों का त्याग किए बिना नहीं रहेगा ।

आज की युवा-पीढ़ी गुमराह बनी हुई है । उसे भक्ष्य-अभक्ष्य, पेय-अपेय का भान नहीं है । इसी कारण वह व्यसनों को सहर्ष स्वीकार कर रही है । शराब, मांसाहार, पान-पराग, अंडा आदि पदार्थों का भक्षण अपनी आत्मा का भयंकर अहित करनेवाले हैं, इस सत्य के भान के अभाव के कारण वह उन पदार्थों का सेवन करती जा रही है...उन्हें विवेक रूपी चक्षु की प्राप्ति हो जाय तो वे स्वतः उन्मार्ग से अपने आपको बचा सकते हैं ।

क्षीर-नीर से भरा कटोरा हंस के सामने रखा जाय तो वह क्षीर को स्वयं पी जाता है और पानी को अलग कर देता है, इसी प्रकार विवेकी व्यक्ति अपने विवेक द्वारा हर कार्य में योग्य भेद कर सकता है, हित में प्रवृत्ति और अहित से निवृत्ति कर सकता है ।

पाप-शल्य

पांव में लगे कांटे को तुरंत निकाल दिया जाय तो
कम महेनत से काम हो जाता है, परंतु
कांटे की उपेक्षा की जाय तो
वह कांटा गहरा चला जाता है । हृदय के पाप को भी
तुरंत निकाल दिया जाय तो अल्प प्रयास से ही
काम हो जाता है, परंतु उस पाप को
छुपाया जाय तो वह शल्य बन जाता है,
जो आत्मा को भयंकर नुकसान पहुँचाता है ।

7

प्रभु से प्रार्थना

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 09-09-2019**

सर्प के मुँह में विष की थैली होती है, फिर भी वह उछलता नहीं है, जब कि बिच्छू की पूँछ में थोड़ासा विष होता है, फिर भी वह अभिमान से अपनी पूँछ को ऊँची करके घूमता है ।

हे प्रभो ! वास्तव में मेरे पास ऐसी कोई शक्ति नहीं, सम्पत्ति नहीं, सत्ता नहीं कि जिसका मैं अभिमान कर सकूँ । देवताओं के रूप के आगे मेरा रूप कोयले के समान है । सम्यग्दृष्टि देवताओं के अवधिज्ञान के आगे मेरा ज्ञान लेश मात्र भी नहीं है ।

असंख्य देवताओं के अधिपति इन्द्र के आगे मेरा आधिपत्य बिन्दु तुल्य भी नहीं है । अतुल बली देवताओं के आगे मेरा बल अंश मात्र भी नहीं है । कहावत **''थोथा चना बाजे घणा''** के अनुसार मेरे पास जो है, उससे भी उसका प्रदर्शन अनेक गुणा है ।

हे कृपालो ! अनेक इन्द्र आपके चरणों की रज बनकर मुक्तकंठ से आपकी प्रशंसा करते थे, फिर भी आपके मन में अभिमान का एक अंश भी पैदा नहीं होता था...और कहाँ मुझ रंक की दयनीय स्थिति ? थोड़ीसी अपनी प्रशंसा सुनकर मैं फूले नहीं समाता हूँ ।

इस मान रूपी अजगर ने मुझे निगल लिया है । इस मान ने मेरे वास्तविक अस्तित्व को भुलावे में डाल दिया है ।

हे करुणावतार प्रभो ! मान की परवशता के कारण मेरी आत्मा की एक बार नहीं, अनंत बार भयंकर दुर्गति हुई है ।

विश्व में सर्वोत्कृष्ट पुण्य प्रकृति (तीर्थंकर नाम कर्म) के आप स्वामी हो ! त्रिभुवन के आप अधिपति हो ! चारों निकाय के देवता और इन्द्रों के द्वारा भी आप पूजनीय हो, फिर भी आपको तनिक भी गर्व नहीं है ।

आपके विराट् स्वरूप के दर्शन के बाद जब मैं अपनी ओर दृष्टि डालता हूँ, तब मुझे अपनी करतूतों पर घृणा पैदा होती है ।

मेरे अस्तित्व का कोई ठिकाना नहीं । पवन के एक झोंके से जिस प्रकार वृक्ष के सूखे पत्ते का अस्तित्व कहीं खो जाता है, उसी प्रकार कर्मसत्ता की एक ही थप्पड़ से मैं चौदह राजलोक के एक किनारे से दूसरे किनारे पहुँच जाता हूँ ।

अहो ! मेरी ऐसी दयनीय और करुण स्थिति है, ऐसी स्थिति में यदि मैं कुछ भी अभिमान करूँ तो यह मेरे लिए कितने शर्म की बात है !

सूर्य की गर्मी से जिस प्रकार बर्फ पिघलने लगता है । उसी प्रकार आपके विराट् स्वरूप को जानने-पहिचानने के बाद मेरा अभिमान चूर-चूर हो रहा है ।

हे प्रभो ! आप मुझ रंक पर कृपा करो और मेरे अभिमान को सर्वथा गला दो । सूर्य की गर्मी के आगे बर्फ टिक नहीं सकता । आपका अनुग्रह होगा तो मेरा अभिमान टिक नहीं पाएगा ।

नम्र बनो

कुएँ में उतरनेवाली बाल्टी यदि झुकती है तो
भरकर बाहर आती है । जीवन का भी यही गणित है ।
जो झुकता है वह प्राप्त करता है,
जो वृक्ष की भांति अक्कड रहता है,
वह कभी भी कुछ भी प्राप्त नहीं कर सकता है ।
यदि किसी से पाना है तो नम्र बनना सीखो ।
नम्रता ही ज्ञान-प्राप्ति का अमोघ उपाय है ।
जो नम्र है-वोही ज्ञानी है ।
जो अभिमानी है, वह शब्द ज्ञान पा सकता है
लेकिन उसके रहस्यार्थ को कभी नहीं ।

8 श्रावक-जीवन की महिमा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 10-09-2019**

श्रावक जीवन अर्थात् कमल सा जीवन । जिस प्रकार कमल कीचड़ में पैदा होता है और जल से बढ़ता है परन्तु वह कमल, कीचड़ और जल दोनों से अलिप्त रहता है ।

यह **'अनासक्ति'** ही श्रावकजीवन की उत्कृष्ट साधना है । धन, सम्पत्ति, वैभव, स्त्री, पुत्र आदि परिवार के बीच रहकर भी उनसे अनासक्त रहना, कोई सामान्य साधना नहीं है ।

अनासक्ति के मार्ग पर उत्तरोत्तर आगे बढ़ने के लिए ही श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप बारह व्रतों का परिपालन करना है ।

यदि श्रावक अपने जीवन में इन व्रतों का समुचित पालन करे तो वह अपने वर्तमान जीवन में भी परमशान्ति का अनुभव कर सकता है । मृत्यु के समय समाधिभाव प्राप्त कर सकता है और परलोक में सद्गति और परम्परा से मोक्षपद प्राप्त कर सकता है ।

श्रावक को अपना जीवन-निर्वाह करने के लिए धन की आवश्यकता रहती है । अपने वृद्ध माता-पिता, दादा-दादी तथा आश्रित संतानों की भी जवाबदारी श्रावक को निभानी पड़ती है । इन सब के लिए उसे धन आदि की आवश्यकता रहती है । अपने जीवन-निर्वाह के लिए श्रावक किसी के पास याचना करे, यह श्रावक के लिए शोभास्पद नहीं है अतः इसके लिए श्रावक को अर्थार्जन करना ही पड़ता है ।

श्रावक को धन रखने की छूट दी गई है, इसका मतलब यह नहीं है कि वह येन-केन उपाय से झूठ, कपट, मिलावट, विश्वासघात आदि करके भी अर्थार्जन करे, श्रावक को अर्थार्जन करना है परन्तु उसमें न्याय और नीति का पूर्णतया पालन करना है ।

न्याय और नीति से अर्जित धन ही व्यक्ति को इस जीवन में शांति दे सकता है । कोई पापानुबंधी पुण्य का उदय हो और अन्याय व

अनीति से भी व्यक्ति खूब धन कमा ले परन्तु उस धन के उपभोग से उसकी अंतरात्मा को कभी शांति नहीं मिल सकती है ।

वास्तव में तो श्रावक का जीवन संतोषी होता है । उसके जीवन में वैभव विलासिता और बाह्य आडंबर को कोई स्थान नहीं होता है । अत्यन्त ही सादगीपूर्ण उसका जीवन होता है । अपने सादगीपूर्ण जीवन-निर्वाह के लिए और अपने आश्रितों के परिपालन के लिए वह आवश्यकतानुसार अर्थार्जन करता है...उसमें यदि कदाचित् भाग्य योग से अधिक धन मिल जाय तो वह उस धन को भोग व विलासिता में खर्च न कर जिनशासन की आराधना व प्रभावना आदि में लगाता है ।

इसका अर्थ यह नहीं है कि वह शासन-प्रभावना के कार्यों को सम्पन्न कराने के लिए अनेकविध पापाचरणों की प्रवृत्ति करे । आज श्रावक-जीवन के इस मूलभूत सिद्धान्त को लगभग भुला दिया गया है । फलस्वरूप इसके कटु परिणाम हमारे सामने स्पष्ट हैं । तारक परमात्मा ने तो धन (परिग्रह) को पाप ही कहा है और इसी कारण श्रमण जीवन में इसके संपूर्ण त्याग पर भार दिया गया है ।

गुरु को हृदय में बिठाओं

गुरु का स्थान, शिष्य के हृदय में होना चाहिये !
जिस शिष्य के हृदय में
गुरु का वास हो, वह शिष्य भी
धन्यवाद का पात्र बन जाता है ।
वो ही शिष्य गुरु की कृपा को प्राप्त कर पाता है ।
जिस शिष्य ने 'गुरु-कृपा' प्राप्त की हो,
वो ही शिष्य, गुरु के अमूल्य ज्ञान
खजाने की प्राप्ति का अधिकारी बनता है ।

9 मुक्ति की दूती प्रभुभक्ति

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 10-09-2019**

जिस प्रकार मयूर की एक टहुकार के साथ चंदन वृक्ष पर लिपटे हुए सभी सर्प एक क्षण में पलायन कर जाते हैं उसी प्रकार नामस्मरण के माध्यम से प्रभु जिसके हृदय मंदिर में पधारते हो, उस आत्मा के कर्मों के बंधन शीघ्र ही शिथिल हो जाते हैं ।

प्रभु की पूजा और भक्ति तो दूर रही परन्तु प्रभु के नाम का स्मरण भी आत्मा को भव के बंधन से मुक्त कर देता है ।

लोगस्स सूत्र के माध्यम से हम चौबीस जिनेश्वर परमात्मा का नाम-स्मरण करते हैं और उनको वंदन करते हैं ।

आराधना अनुष्ठान में हम जो भी कायोत्सर्ग करते हैं, उसमें मुख्यतया लोगस्स सूत्र का ही स्मरण (ध्यान) होता है ।

सुबह-शाम के प्रतिक्रमण में भी अनेक बार लोगस्स सूत्र का कायोत्सर्ग किया जाता है और अनेक बार उस का वाणी से स्पष्ट उच्चारण किया जाता है ।

घातिकर्मों के क्षय से होने वाले केवलज्ञान, केवलदर्शन, वीतरागता और अनंतवीर्य गुण-सभी तीर्थंकरों में एक समान होते हैं ।

घातिकर्मों के क्षय के बाद तीर्थंकर नाम कर्म उदय में आता है, उस कर्म के उदय से जन्म से चार, कर्मक्षय से ग्यारह और देवकृत 19 अतिशय अर्थात् 34 अतिशय सभी तीर्थंकरों के एक समान होते हैं ।

तीर्थंकर परमात्मा के मुख्य 12 गुण, 4 अतिशय-ज्ञानातिशय, वचनातिशय, पूजातिशय और अपायापगमातिशय तथा अशोक वृक्ष आदि आठ प्रातिहार्य सभी तीर्थंकरों के एक समान होते हैं ।

सभी तीर्थंकरों के च्यवन आदि पाँच कल्याणक होते हैं । सभी तीर्थंकरों के च्यवन समय माता को 14 स्वप्न दर्शन, जन्म-समय इन्द्रों

द्वारा प्रभु का मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक, दीक्षा समय इन्द्र आदि का आगमन, शिबिका रचना, दीक्षा बाद इन्द्र द्वारा तीर्थंकर परमात्मा के बाएँ स्कंध पर देवदूष्य रखना, केवलज्ञान बाद समवसरण आदि की रचना व निर्वाण के समय इन्द्रों का आगमन आदि सभी तीर्थंकरों के एक समान होता है ।

श्री अरिहंत परमात्मा की आत्मा जब अव्यवहार राशि की निगोद में से बाहर आती है तो पृथ्वीकाय के रूप में चिंतामणि रत्न, पद्मराग रत्न आदि के रूप में पैदा होती है ।

अप्काय के रूप में महान् तीर्थोदक के जल के रूप में पैदा होती है । वायुकाय में मलयाचल पर्वत आदि के मृदु, शीतल व सुगंधित पवन के रुप में पैदा होती है ।

वनस्पतिकाय में चंदन, कल्पवृक्ष आदि उत्तम वृक्षों के रूप में पैदा होती है । बेइन्द्रिय में दक्षिणावर्त शंख आदि के रूप में तथा तेइन्द्रिय व चतुरिन्द्रिय में भी उत्तम जाति में पैदा होती है ।

पंचेन्द्रिय तिर्यंच में भी उत्तम जाति के अश्व-हाथी के रुप में पैदा होती है ।

नियम जरुरी

जिस प्रकार धन के रक्षण के लिए
तीजोरी पर ताला होना जरुरी है,
उसी प्रकार जीवन के रक्षण के लिए
जीवन में नियम होना जरुरी है ।
जिसके जीवन में किसी प्रकार का नियम नहीं,
वह जीवन विनाश को ही आमंत्रण देता है ।
नियम का बंधन तो आत्मा को
सच्ची स्वतंत्रता दिलानेवाला है ।

10 प्रभु भक्ति की शक्ति

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 11-09-2019**

देवाधिदेव वीतराग परमात्मा की स्तुति करते हुए कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी फरमाते हैं:– हे प्रभो ! आपकी ही असीम कृपा से मैं इस भूमिका तक आया हूँ...अर्थात् अभी तक मेरी आत्मा का जो भी विकास हुआ है, वह आपका ही अनुग्रह है । आपके आलंबन बिना इस संसार में कोई भी आत्मा विकास के मार्ग में एक कदम भी आगे बढ़ नहीं सकती है ।

अतः **''हे दयालु प्रभु ! अब आप मेरी उपेक्षा करें, यह उचित नहीं है ।''** दुनिया में सज्जन वही कहलाता है जो दु:खी के दु:ख को दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील हो । दु:खी के दु:ख की उपेक्षा करने वाला सज्जन नहीं कहलाता है ।

अच्छा डॉक्टर वही कहलाता है जो दर्दी की उपेक्षा न कर, उसे जिस प्रकार शाता हो, उस प्रकार से प्रयत्न करता है ।

Accident में घायल हुए व्यक्ति की उपेक्षा करने वाले डॉक्टर को सज्जन कैसे कहेंगे ?

हे प्रभु ! आपकी कृपा से मुझे यह बात स्पष्ट ख्याल में आ गई है कि दु:ख से भी दोष ज्यादा खतरनाक है । Accident से घायल दर्दी को तो एक ही जीवन का दु:ख है, जबकि आत्मा तो परलोक में भी जानेवाली है ।

हे प्रभु ! शारीरिक रोगों से भी आत्मा में लगे दोष ज्यादा खतरनाक हैं, अतः मेरी आत्मा में लगे दोषों के निवारण में आप मेरी अवश्य मदद करें । आपके अनुग्रह के बिना उन दोषों से बचना मेरे लिए शक्य नहीं है, अतः आप मेरी लेश भी उपेक्षा न करें ।

आपके आलंबन से मैं भयंकर संसार-सागर से भी पार उतर जाऊंगा और आपने मेरी उपेक्षा की तो मैं इस संसार-सागर में डूब जाऊंगा ।

हे प्रभु ! आप पाप के उदय से आए दुःखों को हँसते-हँसते सहन करते थे, जबकि पाप करने की प्रवृत्ति से कोसों दूर रहते थे । पाप के उदय से आने वाले शारीरिक या मानसिक दुःखों में आप मस्त रहते थे, जबकि पाप करने से आप खूब घबराते थे । पाप करने में आप त्रस्त थे ।

हे प्रभु ! मैं आपका भक्त कहलाता हूँ, परन्तु मेरी स्थिति बड़ी विचित्र है, दुनिया मुझे प्रभु कहती है, परन्तु मेरी प्रवृत्ति तो आपसे ठीक विपरीत है ।

मैं पापप्रवृत्ति खूब उत्साह और उल्लास से करता हूँ, जबकि पाप के उदय से आने वाले दुःखों में एकदम आकुल-व्याकुल हो जाता हूँ ।

आप कहते हैं **'पाप करना भयंकर है'** जब कि मैं तो उत्साह से पाप प्रवृत्ति करता हूँ ।

पाप के उदय से आने वाले दुःखों में मैं करुण रुदन करता हूँ...उन दुःखों से अत्यन्त ही त्रस्त हो जाता हूँ ।

गत भवों में मैंने हँसते-हँसते पाप किए हैं और अब उन पापों के उदय से आए दुःखों को रो-रोकर सहन कर रहा हूँ । कर्म के उदय से आए दुःखों में आप हँसते रहे । प्रभु ! मुझे वह शक्ति दो कि मैं अशुभ कर्म के उदय से आए हुए दुःखों को खूब प्रसन्नता पूर्वक हँसते मुँह सहन कर सकूँ और पुण्य के उदय से प्राप्त सुखों के भोग में अनासक्त रह सकूँ ।

11 स्वाद-विजय का श्रेष्ठ उपाय आयंबिल है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 12-09-2019**

मनुष्य को प्राप्त इन्द्रियों में आँख, कान और नाक दो-दो हैं । जबकि उनके द्वारा एक ही देखने, सुनने और सूंघने की प्रवृत्ति होती है । जब कि मनुष्य को जीभ एक मिली है और उसके द्वारा वह दो काम करती है खाना और बोलना ।

इस जीभ में अमृत भी है और जहर भी । यदि जीभ के ऊपर पूर्ण अंकुश है तो यही जीभ वरदान बन जाती है और जीभ पर अंकुश न हो तो वही जीभ शाप बन जाती है ।

वाणी के क्षेत्र में निरंकुश जीभ जिस प्रकार जीवन में भयंकर आँधी ला सकती है, उसी प्रकार स्वाद के क्षेत्र में भी इस जीभ के ऊपर विवेक का अंकुश न हो तो यह जीभ जीवन के स्वास्थ्य में आग लगा सकती है । संयम की साधना के लिए इन्द्रियदमन अनिवार्य है और उस इन्द्रिय दमन में सबसे अधिक भार रसनाजय पर रखा गया हैं क्योंकि अन्य इन्द्रियों की पुष्टता भी रसनेन्द्रिय को ही आभारी है ।

रसनेन्द्रिय जय का सर्वश्रेष्ठ उपाय है– **आयंबिल तप** । आयंबिल में हर प्रकार के स्वाद का त्याग है । आयंबिल में भोजन के सभी रसों का त्याग होता है । दूध, दही, घी, तेल, गुड और तले हुए मिष्टान्न आदि सभी विगइयों का सभी प्रकार के फलों का, सभी प्रकार के मेवों का तथा सभी प्रकार की हरी वनस्पति का आयंबिल में त्याग होता है ।

आयंबिल में रस युक्त भोजन का त्याग ही नहीं है किन्तु नीरस भोजन का सेवन भी है और इसी कारण एक अपेक्षा से उपवास के बजाय आयंबिल करना कठिन है । उपवास में सभी प्रकार के आहार का त्याग है, जब कि आयंबिल में स्वादयुक्त

भोजन का त्याग और रसहीन भोजन का सेवन भी है, अतः दोनों ओर से रसनेन्द्रिय के ऊपर प्रहार होता है ।

उपवास का सेवन निरन्तर नहीं किया जा सकता है, जबकि आयंबिल का तप जीवन पर्यंत किया जा सकता है । एक साथ में सैंकडों हजारों आयंबिल करने वाले तपस्वी इस काल में भी मौजूद हैं ।

आयंबिल में चोबीस घंटे में एकबार भोजन लिया जाता है । आयंबिल का भोजन भी सात्त्विक होता है । शरीर के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए आवश्यक शक्तिदायक तत्त्व आयंबिल के भोजन से प्राप्त हो सकते हैं और इस कारण आयंबिल का तपस्वी दीर्घकाल तक इस तप का आचरण करते हुए भी अपने जीवन में स्फूर्ति का अनुभव कर सकता है ।

ठीक ही कहा है **''रसा रोगस्य कारणम्''** रस ही रोग के कारण हैं । अत्यन्त मधुर मीठे पकवान, मसालेदार भजिए, दहीवड़े, खमण तथा अन्य नमकीन, पावभाजी, होटल के भोजन, बासी भोजन आदि के सेवन के कारण अनेकों के देह में अजीर्ण, बुखार, गैस, ब्लडप्रेशर, हार्टएटेक, मंदाग्नि, सिरदर्द, कब्ज, अपच, कैंसर तथा एड्स आदि के भयंकर रोग पैदा हो गए हैं ।

आयंबिल में सभी प्रकार के बाह्य तपों की आराधना है । आयंबिल में एक ही बार भोजन होने से शेषकाल में अनशन तप की आराधना होती है । आयंबिल में रसहीन भोजन होने से ऊणोदरी का आचरण स्वतः हो जाता है । आयंबिल में छह विगई का त्याग होने से रसत्याग की आराधना हो जाती है ।

Children..If u wish for health, wealth, success and happiness bow down to Arihant Paramatma..
Pray to Arihant and worship
Arihant with faith and devotion.

12

विनय की महत्ता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 13-09-2019**

अहंकार आत्मा का रोग है । शारीरिक रोगों से स्वास्थ्य हानि होती हैं, जब कि अहंकार से आत्मगुणों की हानि होती है । अहं के नाश के लिए अर्हम् की साधना अनिवार्य है । सर्वगुणसंपन्न अरिहंत आदि पंच परमेष्ठि-भगवन्तों को नमस्कार करने से अहंकार दोष का क्षय होता है और नम्रता आदि गुणों की प्राप्ति होती है । जो गुणवान व्यक्ति को नमस्कार करता है, उसके कर्म के बंधन टूटे बिना नहीं रहते हैं ।

श्री दशवैकालिक-सूत्र में चार प्रकार की विनय समाधि बतलाई गई हैं । गुरु की आज्ञा को जिज्ञासु-बनकर सुनने की इच्छा करें । गुरु की आज्ञा को ज्ञानपूर्वक ग्रहण करें । गुरु की आज्ञानुसार कार्य संपादन करने के बाद अपनी आत्म प्रशंसा न करें ।

जिस प्रकार मूल (जड़) में से स्कंध पैदा होता है, स्कंध में से शाखा, शाखा में से छोटी डाली और उसमें से पान, फूल, फल आदि पैदा होते हैं, उसी प्रकार धर्मरूपी कल्पवृक्ष का मूल विनय है और सम्यग्ज्ञान प्राप्ति, सुकुल में जन्म, देवलोक-गमन आदि स्कंध तुल्य हैं तथा परमपद मोक्ष की प्राप्ति उसका फल है ।

हितकारी वचन कहने पर भी गुस्सा करने वाला, जाति आदि का अभिमान करने वाला, अप्रिय बोलने वाला, कपटी, शठ, संयम योग में शिथिलता आदि दोषों से युक्त जो शिष्य, गुरु का विनय नहीं करता है, वह नदी के प्रवाह में बहने वाले काष्ठ की भाँति संसार सागर के प्रवाह में बह जाता है ।

जो शिष्य आचार्य उपाध्याय आदि की सेवा शुश्रूषा करते हैं उनका विनय करते हैं, वे जल के सिंचन से बढ़नेवाले वृक्ष की भाँति ग्रहण व आसेवन शिक्षा से वृद्धि प्राप्त करते हैं ।

अविनीत शिष्य अपनी ज्ञानादि संपत्ति का नाश करता है और विनीत शिष्य अपनी ज्ञानादि संपत्ति में अभिवृद्धि करता है । जो शिष्य निरन्तर गुरु की आज्ञा के अधीन रहते हैं, गीतार्थ बनकर गुरु का विनय करते हैं, वे शिष्य शीघ्र ही समस्त कर्मबंधनों से मुक्त होकर शाश्वत अजरामर पद प्राप्त कर लेते हैं ।

जो शिष्य गुरु से ज्ञान प्राप्त करेगा, उस शिष्य में अपने उपकारी के प्रति कृतज्ञ भाव होने से नम्रता आएगी और गुरु के बिना जो ज्ञान प्राप्त होगा, उसमें कृतज्ञता का अभाव होने से नम्रता नहीं आएगी ।

गुरु से ज्ञान प्राप्त करने पर उनकी सेवा, वैयावच्च, भक्ति आदि का लाभ शिष्य को प्राप्त होता है । गुरु के बिना पढ़ने पर यह लाभ नहीं मिल पाता है ।

गुरु से विनयपूर्वक जो ज्ञान प्राप्त होता है, गुरु की अनुग्रह कृपा प्राप्त होती है, जिससे आत्म विकास-तीव्र गति से होने लगता है । केवल पदार्थ बोध के लिए ज्ञान-प्राप्ति नहीं करने की हैं, बल्कि ज्ञान को प्राप्त कर जीवन में उतारने के लिए ज्ञान पाना है ।

गुरु के पास विनयपूर्वक ज्ञानार्जन करने पर अपना आचरण भी शुद्ध बनता जाता हैं । इन्हीं कारणों से ज्ञान की प्राप्ति गुरु से ही करने का स्पष्ट विधान है ।

Lord Mahavir proved that human
being is more stronger than celestnal being.
This means human birth is very precious
and we should not waste it
only in material pleasures but must
achieve spiritual upliftment.

13

क्रोध खतरनाक है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 14-09-2019**

क्रोध करने से व्यक्ति को अनेक बुरे परिणाम भुगतने पड़ते हैं । क्रोध से द्वेष पैदा होता है । कलह-क्लेश वैरभाव पैदा होता है । क्रोध से शारीरिक नुकसान होता है । क्रोध हमारे जीवन पर खूब बुरा प्रभाव डालता है ।

बाह्य जीवन पर प्रभाव :– क्रोध करने से हमारे भीतर रहा द्वेष भाव प्रकट होता है, वही द्वेष आगे चलकर वैर का रूप लेता है । क्रोध से वैमनस्य बढ़ जाता है । क्रोधी का जीवन अशांत और अस्त-व्यस्त हो जाता है । क्रोधी व्यक्ति आवेश में न बोलने के शब्द बोल देता है । क्रोध में व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा खो देता है । क्रोध रूपी आग प्रेम, विनय और विवेक को जला देती है । क्रोधी के साथ कोई व्यवहार करना नहीं चाहता है ।

शारीरिक नुकसान :– मनोवैज्ञानिकों की राय है कि कई दिनों तक काम करने में जो श्रम लगता है, वह श्रम थोड़ी देर क्रोध करने में लग जाता है । क्रोध से खून में विष पैदा होता है । जठराग्नि मंद हो जाती है । क्रोध से क्षय व अजीर्ण होता है । क्रोध से मन की प्रसन्नता नष्ट हो जाती है ।

आध्यात्मिक नुकसान :– क्रोध करने से मन में तीव्र अशुभ भाव पैदा होते हैं । नवीन अशुभ कर्मों का बंध होता है । पूर्व में उपार्जित पुण्यकर्म भी नष्ट हो जाता है । क्रोध से स्मरणशक्ति का नाश होता है । क्रोध मे व्रतभंग भी हो जाता है ।

क्रोध से बचने के उपाय :–

1) बालस्वभाव-चिंतन :– क्रोध करना यह बालिश चेष्टा है । जैसा तैसा बोलना यह मूढ़ जीव का स्वभाव है । अपने ऊपर किसी को क्रोध करते हुए देखकर सोचें कि यह तो मूढ़ पुरुषों का स्वभाव है अतः मुझे उसका प्रतिकार करने की क्या आवश्यकता है ? सामने वाला

व्यक्ति कुछ बोल रहा हो तो सोचें, उसके बोलने से मुझे क्या नुकसान है ? वह मुझे मार तो नहीं रहा है । मार रहा हो तो सोचें, **'वह मुझे धर्म से भ्रष्ट तो नहीं कर रहा है ।'** इस प्रकार विचार कर अपने मन को शांत करने की कोशिश करनी चाहिए ।

2) कर्मफल-चिंतन :– कोई व्यक्ति अपनी निंदा करता हो या अपने ऊपर गुस्सा करता हो तो सोचें, **'मेरे अशुभकर्म का उदय है । मेरे पापकर्म के उदय बिना मेरा कोई कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता है ।'** अतः दोषित वह नहीं है । दोषित मैं स्वयं हूँ । इस प्रकार विचार कर अपने मन को शान्त करने की कोशिश करनी चाहिए । कर्म का बंध हमने स्वयं किया है, अतः उस कर्म की सजा हमें ही भुगतनी चाहिए । अपनी निंदा करनेवाला तो निमित्त मात्र है, दोष तो मेरे ही कर्मों का है ।

3) क्षमागुण-चिंतन :– क्षमा रखने से कितना फायदा होता है, इस बात का खूब चिंतन करना चाहिए । क्षमा रखने से मानसिक स्वस्थता प्राप्त होती है । अन्य का अपने ऊपर प्रेम बढ़ता है । अशुभ पाप कर्मों का नाश हो जाता है । नवीन पुण्यकर्म का बन्ध होता है ।

अहंकार छोड़ो

अहंकार आत्म साधना में बाधक तत्त्व है ।
अपराध हो जाना मानवीय प्रकृति है ।
परन्तु जो अहंकारी है, वह उस अपराध के बदले
दूसरे से क्षमा नहीं मांग सकता ।
अहंकारी में दूसरे के प्रति तिरस्कार भाव रहा होता है,
अतः दूसरे के अपराध को क्षमा भी नहीं कर सकता ।
साधु का वेष तो कोई भी पहिन सकेगा,
परन्तु साधुता वही व्यक्ति प्राप्त कर सकेगा,
जिसने अहंकार के वस्त्र उतार दिए हैं ।

14 हे प्रभु ! आप सर्वगुणसम्पन्न हो

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 15-09-2019**

एक विराट् महासागर को भुजाओं के बल से तैरने की ताकत किसमें है ? सागर में अनेक प्रकार के भयंकर जल-जंतु होते हैं, ऐसा महासागर आंधी और तूफान से और भी भयंकर हो जाता है ।

कल्पांतकाल का भयंकर तूफान चल रहा हो, उस समय महासागर में रहे भयंकर मगरमच्छ आदि जलजन्तु इधर-उधर दौड़ लगा रहे हों, ऐसे भयंकर महासागर को भुजाओं के बल से पार उतरना तो और भी कठिन कार्य है, बस, इसी प्रकार हे प्रभु । आप गुणों के महासागर हो, चन्द्र के समान कांतिमान् ऐसे अनन्त गुणों के आप भंडार हो । आपके गुणों की गणना करने में देवताओं के गुरु बृहस्पति भी समर्थ नहीं हैं तो फिर मेरी क्या ताकत है ?

बुद्धि के स्वामी बृहस्पति भी आपके गुणों की गणना नहीं कर सकते हैं तो मैं आपके गुणों की स्तवना करने के लिए सज्ज बना हूँ, सचमुच, यह मेरी कैसी हास्यास्पद चेष्टा है ।

जब तक आत्मा में राग या द्वेष का भाव है, तब तक आत्मा में ज्ञान की अपूर्णता होती है । वह अपूर्ण आत्मा, पूर्ण ऐसे परमात्मा के समस्त गुणों का गान करने में कैसे समर्थ हो सकती है !

हे परमात्मा ! आप तो अनंतगुणों के स्वामी हो, जबकि मेरी वाणी की शक्ति परिमित है । परिमित शक्ति के द्वारा आपके अपरिमित गुणों का गान कैसे संभव है ?

परमात्मा के पूर्ण गुणों के दर्शन के लिए पूर्ण बनना बहुत जरुरी है । जो स्वयं अपूर्ण है, वह परमात्मा की पूर्णता को कैसे पहिचान सकेगा ?

हे मुनीश्वर परमात्मा ! एक क्रूर सिंह से मुकाबला करने की ताकत कमजोर हरिणी में नहीं होती हैं, फिर भी वह हरिणी अपने बच्चे पर हुए सिंह के आक्रमण को देखकर अपने बच्चे के रक्षण के लिए सिंह

का प्रतिकार करने में भी नहीं हिचकिचाती है । सिंह के आगे उसका टिकना संभव नहीं है । फिर भी वह अपने कर्त्तव्य-पालन से च्युत न होकर अपनी संतान की रक्षा के लिए यथाशक्त प्रयत्न करती है ।

सिंह से मुकाबला करने में एक मात्र उसका मातृत्व-भाव ही कारण है । सिंह से मुकाबला करने में उसकी हार एकदम निश्चित है, फिर भी कर्त्तव्य-पालन ही उसे उस प्रवृत्ति के लिए प्रेरित करता है ।

अमावस्या की घनघोर रात्रि में चारों ओर सर्वत्र अंधकार व्याप्त होता है । उस समय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता है परन्तु दूसरे दिन के मंगल प्रभात में ज्यों ही पूर्व दिशा में सूर्य की किरणों का आगमन होता है, त्यों ही अंधकार कहीं भाग जाता है ।

घोर अंधकार भी सूर्य किरणों के सामने टिक नहीं सकता । अंधकार चाहे कितना ही गहरा क्यों न हो, उसकी शक्ति सीमित है । प्रकाश की मात्रा कम ही क्यों न हो, उसकी शक्ति सर्वाधिक है । जब तक पूर्व दिशा में सूर्य की लालिमा छा नहीं जाती है । तभी तक पृथ्वी पर अंधकार का साम्राज्य छाया रहता है, सूर्य के आगमन के साथ ही अंधकार दूर भाग जाता है ।

इसी प्रकार हे प्रभु ! आपके गुणों की स्तवना के साथ भक्तात्मा के कोटि भवों में उपार्जित किए हुए पापकर्म क्षीण हो जाते है ।

शोक न करे

**संस्कृत में एक सुंदर सुभाषित हैं 'गतं न शोच्यं ।'
जो बीत चूका हैं, उसके विषय में ज्यादा
शोक नहीं करना चाहिये । जो बीत चुका हैं,
वह भूत हो चूका है । जगत् में उसका अस्तित्व सदा के
लिए मिट चुका है । उसका विचार करने से,
उसकी चिंता करने से क्या फायदा होने वाला है ?'**

15

प्रभु ही शरण है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 16-09-2019**

हे प्रभु ! भयमुक्त बनने के लिए आज तक मैंने अनेक व्यक्तियों की शरण स्वीकार की...परन्तु आज तक किसी भी व्यक्ति या वस्तु की शरण से मेरी आत्मा भयमुक्त नहीं बन पाई ।

अपने जीवन की सुरक्षा के लिए चींटी के भव में मैने बिल बनाया...परन्तु नदी-तालाब का पानी बिल में घुस गया और वह मेरी मौत का कारण बन गया । सुरक्षित स्थान में भी जीवन असुरक्षित ही रहा ।

जंगली पशु के भव में हिंसक मनुष्य से बचने के लिए किसी गुफा का आश्रय लिया लेकिन किसी शिकारी ने आकर वहाँ भी गोली से बींध लिया ।

पक्षी के भव मे ठंड-गर्मी आदि से बचने के लिए किसी वृक्ष पर घोंसला बनाया । घोंसले में रहा पक्षी, शांति से जीवन बिताने लगा, किन्तु किसी मनुष्य ने आकर उस झाड़ को ही मूल से उखाड़ दिया । वह पक्षी घोंसले में भी सुरक्षित नहीं रहा ।

मनुष्य के भव में ठंडी-गर्मी आदि से बचने के लिए अपना खुद का घर बनाया, परन्तु उस घर में भी काया रोगों से घिर गई और मनुष्य के लिए वह घर भी श्मशान बन गया । संसार में आत्मा सर्वत्र असुरक्षित रही है ।

जो स्वयं भिखारी होगा, वह दूसरे के दारिद्र्य को कैसे दूर कर सकेगा ?

जो स्वयं कमजोर होगा, वह दूसरों को कैसे रक्षण दे सकेगा ? जो स्वयं भयभीत होगा, वह दूसरों को भयमुक्त कैसे कर पाएगा ? इस संसार में देव-देवेन्द्र और चक्रवर्ती भी सर्वथा भयमुक्त नहीं हैं तो वे हमें पूर्ण शरण कैसे दे सकते हैं ? भले ही देवताओं का आयुष्य लाखों-

करोड़ों, अरबों-खरबों वर्ष...पल्योपम और सागरोपम जितना क्यों न हो, फिर भी उनकी आत्मा पर मृत्यु का कलंक तो लगा हुआ ही है...एक दिन तो उनका अस्तित्व नष्ट होता ही है ।

भले ही देवताओं की अकाल-मृत्यु नहीं होती है....परन्तु आयुष्य कर्म पूरा होने पर तो उन्हें अपना देह छोड़ना ही पड़ता है, इससे स्पष्ट है कि मौत की नंगी तलवार उनके सिर पर भी अवश्य लटक रही है ।

यद्यपि देवताओं का आयुष्य निरुपघाती होता है उनके आयुष्य पर किसी प्रकार का उपघात नहीं लगता है, अर्थात् देवताओं की कभी अकालमृत्यु नहीं होती है...फिर भी उनका आयुष्य एक दिन तो पूरा होता ही है और उन्हें भी मनुष्य या तिर्यंच गति में जाना ही पड़ता है । मनुष्य के रूप में जन्म लेना हो तो उन्हें भी गर्भावास की भयंकर पीड़ा सहन करनी ही पड़ती है ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक के प्रथम दो देवलोक के अधिकांश देवता मरकर तिर्यंच गति में और उसमें भी एकेन्द्रिय में चले जाते हैं ।

सम्यग्दर्शन के अस्तित्व में देव अपने आगामी भव के आयुष्य का बंध करते हैं तो वे अवश्य मनुष्य आयुष्य का ही बंध करते हैं ।

सम्यग्दृष्टि देव के लिए एक ही गति है–मनुष्यगति, जो मिथ्यादृष्टि देव हैं, उनके लिए तो मनुष्य गति दुर्लभ ही है । अधिकांश मिथ्यादृष्टि देवता मरकर तिर्यंच गति में जाते हैं ।

प्रवृत्ति

दूसरों की पीडा में निमित्त बनना दुर्गुण हैं, उसी प्रकार दूसरों की अप्रीति में निमित्त बनना भी भयंकर दुर्गुण है । दूसरों को अप्रीति पैदा हो,वैसी प्रवृत्ति हमें छोड देनी चाहिये ।

16 माया छोड़े सरल बनें

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 17-09-2019**

पाप के स्वीकार में बालक बनो, इंसान मात्र भूल का पात्र है । जीवन में जाने-अनजाने में कई भूलें हो जाती हैं, परन्तु भूल हो जाने के बाद उन भूलों का हृदय से स्वीकार होना चाहिए । जो व्यक्ति अपनी भूलों को स्वीकार नहीं करता है, उस आत्मा की कभी शुद्धि नहीं होती है ।

भूलों की शुद्धि करने के लिए बालक जैसा हृदय होना चाहिए । बालक का हृदय दर्पण की भाँति एकदम स्वच्छ होता है, उसे माया कपट करना नहीं आता है । जो पाप जिस रूप में हो गया हो, उसे वह तुरन्त स्वीकार कर लेता है । अतः आलोचना प्रायश्चित्त करते समय बालक की तरह सरल बनना चाहिए ।

पाँव में काँटा लग जाय तो हम तुरन्त ही उसे बाहर निकालने की कोशिश करते हैं । यदि काँटे को बाहर न निकाला जाय तो वह भविष्य में भयंकर तकलीफ दे सकता है ।

जीवन में कोई पाप हो जाने के बाद उस पाप को छिपाना यह आत्मा का शल्य है । आत्मा में रहे इस शल्य को बाहर निकालना बहुत ही जरूरी है । समय रहते उस शल्य को बाहर नहीं निकाला जाय तो भविष्य में आत्मा की स्थिति अत्यन्त ही भयंकर हो सकती है । अतः साधक आत्मा को शल्ययुक्त होकर एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए ।

देह के शल्य से भी आत्मा का यह शल्य अत्यन्त ही खतरनाक है । देह का शल्य अल्प समय के लिए नुकसान करता है, जबकि आत्मा का यह शल्य अनेक भवों तक आत्मा को हैरान-परेशान करता है । लक्ष्मणा साध्वी आदि के प्रसंगों को जानने के बाद तो अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

रोग को छिपाने से रोग घटता नहीं है, बल्कि बढ़ता ही जाता है, इसी प्रकार शल्यपूर्वक धर्म-आराधना करने से आत्मा का रोग

मिटता नहीं है, बल्कि यह रोग बढ़ता ही जाता है । पाप की आलोचना भी शल्य रहित करे तो ही लाभ होता है । जिन-जिन आत्माओं ने पाप को छिपाने की कोशिश की, उन-उन आत्माओं का संसार बढ़ा है और जिन्होंने शल्यरहित होकर अपने पापों का प्रायश्चित किया, वे आत्माएँ अल्पकाल में ही मोहमाया के बंधन से सर्वथा मुक्त बनी हैं ।

साधक आत्मा का यह कर्तव्य है कि वह भूलकर भी आत्मा में शल्य को स्थान न दे ।

जो आत्मा सरल है अर्थात् जिसमें माया-कपट की गाँठें नहीं हैं, उन्हीं आत्माओं की शुद्धि हो सकती है, उन्ही आत्माओं का कल्याण हो सकता है । परन्तु जो आत्माएँ मायावी हैं, कपटी हैं, उन आत्माओं का कभी कल्याण नहीं हो सकता है ।

मायावी व्यक्ति का जीवन मुख में राम और बगल में छुरी जैसा होता है । हाथी के चबाने के दाँत अलग होते हैं और दिखाने के दाँत अलग होते हैं । मायावी व्यक्ति बाहर से अलग दिखावा करता है और उसके भीतर कुछ और ही होता है ।

धागे में गाँठ आने के साथ ही जैसे सिलाई मशीन खटखटाने लगती है, उसी प्रकार हृदय में माया आने के साथ ही विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है ।

तृप्ति

आज मनुष्य ने अपने घर को गोदाम बना दिया है । बाजार में जो चीज देखी, लेने का मन हो गया और उसका संग्रह चालू हो गया । इतनी इतनी वस्तुओं का संग्रह होने पर भी आश्चर्य है कि आज का मानवी अतृप्त ही है । सचमुच, बाह्य पदार्थों से आत्मा कभी भी तृप्ति नहीं हो सकती है ।

17 उपकारी के उपकार को न भूलो

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 18-09-2019**

कृतज्ञ व्यक्ति धर्मदाता गुरु को परम उपकारी मानकर उनका खूब गौरव करता है, उससे गुणों की वृद्धि होती है । इस कारण कृतज्ञ व्यक्ति धर्म के अधिकार के विषय में योग्य कहलाता है ।

जो व्यक्ति अपने उपकारी के उपकार को मानता है और उसे याद रखता है, वह कृतज्ञ है । कृतज्ञ व्यक्ति हमेशा अपने उपकारी के उपकार को याद करके उसे चुकाने के लिए प्रयत्नशील रहता है । वह सदा यही इच्छा करता है कि कब मुझे अवसर मिले ताकि मैं अपने उपकारी को सहायक बन सकूँ ।

माता-पिता, विद्यागुरु और धर्मदाता-धर्मगुरु का हम पर महान् उपकार होता है । इस जीवन में हम जो कुछ भी सुन्दर व श्रेष्ठ कार्य करते हैं, उनमें इन्हीं का मुख्य हिस्सा है ।

माता-पिता हमें जन्म देकर हमारा पालन-पोषण करते हैं । सर्व चिन्ताओं से मुक्त कर अध्ययन-शिक्षण आदि की व्यवस्था करते हैं । खान-पान, वस्त्र, मकान आदि जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति वे ही करते हैं । इस प्रकार माता-पिता का हम पर अगणित उपकार है, अतः उनके उपकार को सदैव याद रखना चाहिये और अपनी शक्ति के अनुसार उनकी तन-मन और धन से सेवा करनी चाहिये ।

अक्षर-ज्ञान देने वाले विद्या-गुरु का भी अपने पर कम उपकार नहीं है । अज्ञानता के कारण नवजात शिशु का जीवन पशुवत् होता है । व्यावहारिक शिक्षण के बाद ही उसमें ज्ञान का प्रकाश और विवेक का पुंज प्रकट होता है । ज्ञान से ही व्यक्ति में विवेक प्रकट होता है, जिससे उसे कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य का भान होता है ।

अपनी आत्मा पर सर्वोत्कृष्ट उपकार धर्मदाता-गुरु का है । माता

पिता आदि लौकिक उपकारी हैं जबकि धर्म-गुरु तो लोकोत्तर उपकारी हैं। कहावत है **'गुरु बिना ज्ञान नहीं'** धर्म-गुरु के बिना हमें आत्मा के शुद्ध स्वरूप आदि का बोध कैसे हो सकता है ?

साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के विरह-काल में आचार्य भगवन्त ही तीर्थंकर प्ररूपित धर्म की देशना देते हैं। इस प्रकार धर्मोपदेशक आचार्य भगवन्त का अपने पर महान् उपकार है। उन्हीं की धर्मदेशना के श्रवण से हमें आत्म-ज्ञान होता है। आत्मा की गति-अगति, कर्म-बन्धन, व कर्म-मुक्ति, जीव-अजीव आदि नौ तत्त्वों का ज्ञान, धर्मदेशना के श्रवण से ही होता है। आजीवन सेवा करने पर भी धर्मदाता गुरु के उपकार का बदला चुका नहीं सकते हैं।

ऐसे परम उपकारी महापुरुषों के उपकार को सदैव याद रखना चाहिये और उनके प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट करना चाहिये।

जैन शासन में **'नमस्कार महामंत्र'** का अत्यधिक महत्व है। उस नमस्कार-महामंत्र में सर्व प्रथम 'नमो' पद है। नमो अर्थात् नमस्कार का भाव। साधक पंच परमेष्ठी को नमस्कार करके परमेष्ठी भगवन्तों के उपकारों के प्रति कृतज्ञता भाव प्रकट करता है।

अपने उपकारियों के प्रति कृतज्ञता का भाव आने के बाद ही जीवन में धर्म का प्रारम्भ होता है। कृतज्ञता तो मानवता का मूलभूत प्राण है। यदि मानव-जीवन में कृतज्ञता नहीं है तो उसका जीवन पशु से भी हल्का है क्योंकि पशुओं में भी हमें कृतज्ञता दिखाई देती है।

रोटी का टुकड़ा खाने वाला कुत्ता भी अपने स्वामी के प्रति पूर्ण वफादार रहता है और रात्रि में चोर आदि से मालिक की रक्षा करता है। जंगली पशुओं में भी हमें कई बार कृतज्ञता के दर्शन होते हैं।

18 ममत्व ही कर्मबन्ध का कारण है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 19-09-2019**

ममत्व ही आत्मा के लिए कर्मबन्ध का मुख्य कारण है । ममत्व अर्थात् सांसारिक क्षणिक पदार्थों का अनुराग । जो अपना नहीं है उसे अपना मानना, यही सबसे बड़ी मुर्खता है ।

जो धन कभी अपना हुआ नहीं, होगा नहीं, ऐसे धन को अपना मानना यह धन का ममत्व कहलाता है । पुत्र-पत्नी, भाई, बहन आदि के संबंध मात्र एक भव तक ही रहने वाले हैं । अपने देह के नष्ट होने के साथ ही वे संबन्ध पूरे हो जाने वाले हैं, फिर भी उन संबंन्धों को स्थायी मानकर उनके वियोग में आँसू बहाना ममत्व का ही प्रकार है ।

अपना देह नाशवन्त है, क्षणभंगुर है, बाह्य पुद्गलों से बना हुआ है, आत्मा से सर्वथा भिन्न है, फिर भी उस देह में आत्मबुद्धि कर उस देह के पालन-पोषण और संवर्धन के लिए अनेक प्रकार के पापाचरण करना, उसके नाश में अपना नाश मानना आदि देह ममत्व का ही प्रकार है ।

इस प्रकार देह, धन, पुत्र, पुत्री, पत्नी आदि के ममत्व के कारण आत्मा पापकर्म का बंध करती है और उस पापकर्म के उदय से जीवात्मा संसार में भटक कर नाना प्रकार के दुःख प्राप्त करती है । इस प्रकार कह सकते हैं कि ममत्व भाव, राग भाव ने इस आत्मा को संसार में रुलाया है । इस राग के बंधन से मुक्त होने के लिए ही वैराग्य की साधना है । प्रार्थनासूत्र में सर्व प्रथम इसी की प्रार्थना की गई है । हे परमात्मा ! आपकी कृपा से मुझे इस संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा हो ।

राग के मुख्य तीन प्रकार हैं–काम राग, स्नेह राग और दृष्टि राग ।

पाँच इन्द्रियों के विषयभोगों के प्रति रहे राग को **कामराग** कहते हैं । शारीरिक सम्बन्धीजन के प्रति रहे राग को **स्नेह राग** कहते हैं ।

अपनी मान्यता गलत सिद्ध होने पर भी उस कदाग्रह को नहीं छोड़ना **दृष्टिराग** कहलाता है ।

अपने मन के भीतर क्षणिक सुखों के प्रति रहे राग-भाव को तोड़ने के लिए शुभ विचारों से मन को भावित करता है । पाँच इन्द्रियों का विषयवृक्ष यह तो विषवृक्ष समान है । विषवृक्ष के फल ही जहरीले होते हैं, परन्तु विषयवृक्ष की तो छाया भी अत्यन्त ही खतरनाक है ।

पाँच इन्द्रियों के शब्द आदि विषय तो काले नाग के फन की तरह अत्यन्त ही खतरनाक हैं । साँप का विष तो एक ही जीवन का अंत लाता है, जबकि विषय-वृक्ष तो आत्मा को अनेक भवों तक संसार में भटकाता है ।

यह विशाल साम्राज्य पाँव की धूल के समान है । पाँव में लगी धूल को कोई सँभालता नहीं है, उसी प्रकार पुण्य के उदय से प्राप्त राज्य सुख में भी मुग्ध बनने जैसा नहीं है । धूल की भाँति उसका सर्वथा त्याग करने में ही सच्चा श्रेय है ।

संसार में हर भव में आत्मा को नया देह प्राप्त होता है । उस देह के अनुसार दैहिक संबंध भी जुड़ते हैं । भूतकाल में अनन्त आत्माओं के साथ माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहन आदि के संबंध हुए हैं । भव पूर्ण होते ही वे संबंध भी पूरे हो जाते है, परन्तु उन संबंधों की ममता आत्मा को संसार में भटकाती है । वे संबंध तो बेड़ी के समान हैं, उन सम्बन्धों में ममत्व भाव रखने से क्या फायदा ?

19

आहार क्यों और कैसे ?

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 20-09-2019**

मानव अन्य प्राणियों की अपेक्षा विकसित व श्रेष्ठ प्राणी है । उसके पास सोचने व समझने के लिए मन व बुद्धि है । वह अपनी बुद्धि के बल से अपने भविष्य के हित-अहित का विचार कर सकता है । किसी भी कार्य का प्रारम्भ करने के बाद उसके परिणाम की गहराई तक पहुँचने की शक्ति मानव-बुद्धि में रही हुई है ।

आहार के संदर्भ में भी वह बहुत कुछ सोच सकता हैं, समझ सकता है और विवेक के अनुसार उसका आचरण भी कर सकता है ।

पशु-पक्षियों का सामान्य जीवन वर्तमानजीवी होता है । आगे-पीछे के परिणामों को सोचने की दीर्घ दृष्टि का उनमें अभाव होता हैं, अतः वे न तो सोच सकते हैं और न ही निर्णय ले सकते हैं कि कौन-सा भोजन भक्ष्य है, कौन-सा अभक्ष्य ? कौन-सा भोजन हिंस्य है, कौन-सा अहिंस्य ? क्या भोग्य है, क्या त्याज्य है ?

इस विवेक दृष्टि के अभाव के कारण वे प्राणी अधिकांशतः वर्तमान का ही विचार करने वाले होते हैं । पशु-पक्षी के आगे कुछ भी वस्तु डाली जाएगी, वे अपना मुँह डाले बिना नहीं रहेंगे, फिर चाहे उनके लिए हितकर हो या अहितकर ।

मानव एक बुद्धिमान प्राणी है । वह चाहे तो आहार के क्षेत्र में भी अपने विवेक चक्षु का उपयोग कर सकता है । मानव मुख कोई Letter Box तो नहीं है कि इसमें कुछ भी, कभी भी और कितना भी क्यों न डाला जाय अथवा कोई कचरा पेटी भी तो नहीं कि उसमें जो कुछ, जब कभी डाल दिया जाय ।

जैसा हम आहार ग्रहण करते हैं, उसका हमारे जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है । भोजन में से केवल हड्डी, मांस, मज्जा या खून ही

नहीं बनता है, बल्कि उससे विचार भी बनते हैं, बिगड़ते हैं; व्यक्ति के संस्कार भी आहार से प्रभावित हुए बिना नहीं रहते हैं ।

हम जो कुछ खाते हैं, उस पदार्थ के गुणधर्मों का असर हमारे मन, चित्त और विचारों पर हुए बिना नहीं रहता है । भोज्य वस्तु हमारे चित्त को अवश्य प्रभावित करती है । हमारे चित्त के अध्यवसाय भी हमारे भोजन से बनते / बिगड़ते हैं ।

कुछ लोग ऐसा कुतर्क देते हैं कि भोजन का संबंध तो शरीर के साथ है, आत्मा के साथ कुछ भी नहीं । **'मन चंगा तो कथरोट में गंगा'** हमारा तो मन शुद्ध है, अतः कुछ भी खाएँ पीएँ हमारी आत्मा के अध्यवसायों पर कुछ भी फर्क नहीं पड़ता है । परन्तु उनकी इन बातों में कोई दम नहीं है । भोजन की हमारे चित्त पर गहरी असर पड़ती ही है, उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि किसी को गहरी शराब पिला देने से वह अपनी सूझ-बूझ खो बैठता है, उसकी विवेक-शील प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है वह जैसा-तैसा बकवास करने लग जाता है और उस शराब के स्थान पर ब्राह्मी आदि बुद्धिवर्धक वस्तु का उपयोग किया जाय तो उसका भी परिणाम Result प्रत्यक्ष दिखाई देता है । कहावत भी है **'जैसा खाए अन्न, वैसा होवे मन'** जैसा-आहार वैसे विचार ।

बड़ों को सम्मान-दान

मानव जीवन के साथ अनेक कर्त्तव्य जुड़े हुए हैं, उनमें एक कर्त्तव्य है, बड़ों को सम्मान-दान । *बड़ों का सम्मान करना, उन्हें आदर देना, अपना अवश्य कर्त्तव्य है ।* कदाचित् किसी को सम्मान न दे सको तो भी किसी का अपमान तो कभी नहीं करना चाहिये । अपमान का जख्म गहरा होता हैं, उसको ठीक होने में बहुत देर लगती है, अतः जीवन में योग्य का सत्कार करना सीखो । योग्य का सत्कार तुम्हारे जीवन को ऊँचा उठाएगा ।

20 मन को समता भाव में जोड़ दो

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 21-09-2019**

यदि आपको संसार से भय लगा है और मोक्ष पाने की तीव्र तमन्ना जगी है । यदि आपको जन्म-मरण के जंजाल से मुक्ति पानी है तो सर्वप्रथम अपने मन को समताभाव में जोड़ दो । समता के साथ यदि मन को जोड़ दोगे तो आपकी अध्यात्म-साधना निरन्तर आगे बढ़ती जाएगी ।

समता को दृढ़ बनाने के लिए ममता का त्याग जरूरी है । ममता से समता का नाश होता है । अतः समता के रक्षण और पोषण के लिए स्त्री, पुत्र, धन और देह की ममता का त्याग अत्यन्त जरूरी है । स्त्री-पुत्र आदि राग के बाह्य साधन हैं, उनके संग से राग की अभिवृद्धि होती है, अतः उनकी ममता का त्याग करो ।

बाह्य पदार्थों की ममता के विसर्जन के लिए इन्द्रियजय भी अनिवार्य है । पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषयों के सेवन से ही स्त्री-पुत्र-धन और देह पर राग पैदा होता है, अतः अपने चित्त में से राग की मलिनता को दूर करने के लिए विषय-प्रमाद का त्याग करना चाहिये ।

विषय और कषाय दोनों संसारवर्धक हैं । अतः विषय के त्याग के साथ-साथ कषाय का भी त्याग करना चाहिये ।

जहाँ कषाय जीवित हैं, वहाँ समता का अस्तित्व संकटग्रस्त बन जाता है । अतः समता के रक्षण के लिए जीवन में से क्रोध-मान-माया और लोभ रूप कषायों का भी त्याग करना चाहिये ।

अपने मन-वचन और काया को विषय-कषाय से मुक्त बनाने के लिए सतत शास्त्र-स्वाध्याय जरूरी है । मन को वश में रखने के लिए स्वाध्याय लगाम समान है, अतः वह लगाम सदैव हाथ में रखनी चाहिए ।

मन ही मनुष्य के उत्थान और पतन का कारण है । निरंकुश मन

पतन में और अंकुश युक्त मन उत्थान में कारण बनता है, अतः आत्म-साधना के लिए मनोनिग्रह अत्यन्त ही जरूरी है । मन को वश में करने के लिए स्वाध्याय-जाप-ध्यान और भावना श्रेष्ठ उपाय है । शुभ-ध्यान में मन को जोड़े रखने से वह मन आत्मोत्थान का कारण बनता है...और आत्मा तीव्रगति से विकास के पथ पर आगे बढ़ सकती है ।

मन को वैराग्य से भावित करने के लिए अनित्य भावना जरूरी है ।

मन को वैराग्य से भावित करने के लिए अनित्य-अशरण और संसार भावना का चिन्तन करना चाहिये । संसार से विरक्त मन ही मुक्ति के लिए प्रयत्नशील बनता है, अतः अपने चित को सतत वैराग्य के उपदेश-श्रवण-वाचन द्वारा भावित करना चाहिये ।

बालक का रक्षण और संवर्धन माँ के सान्निध्य में ही रहा हुआ है । माँ से बिछुड़े हुए बालक का जीवन अन्धकारमय बन जाता है, उसका जीवन-विकास अवरुद्ध हो जाता है । बस, इसी प्रकार चित्त भी बालक समान है । अभी तक हमारे चित्त में वह सामर्थ्य प्रकट नहीं हो पाया है कि जिसके बल से हम भयंकर उपसर्गो में भी स्थिर रह सकें ।

सज्जन

धीर और सज्जन पुरुष अपने न्याय मार्ग से कभी भी विचलित नहीं होते हैं । **लोग निंदा करे या प्रशंसा करे, इसका उन्हें डर नहीं होता हैं । लोक निंदा के भय से सत्कर्म की प्रवृत्ति को छोडते नहीं हैं । लक्ष्मी आए या चली जाए, इसकी उन्हें चिंता नहीं होती हैं । मृत्यु आज आए या कल, इसका इन्हें कोई डर नहीं होता हैं ।** ***सज्जन पुरुषों का मन, न्याय व सत्यमार्ग में अत्यंत ही दृढ होता हैं, उन्हें न्याय मार्ग से विचलित करने की ताकत किसी में नहीं होती हैं ।***

21 अपना स्वभाव अच्छा बनाएँ

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 22-09-2019**

50 लीटर दूध में जहर की एक बुंद गिर जाती है, फिर वह दूध, दूध नहीं कहलाता है, बल्कि जहर बन जाता है । दूध पुष्टि का काम करता है और जहर मारने का काम करता है ।

जहर की एक बूंद दूध की पौष्टिकता को समाप्त कर देती है । बस, इसी प्रकार चाहे जितने गुण हों परन्तु स्वभाव अच्छा नहीं है तो अन्य सभी गुणों पर पानी फिर जाता है । जिसका स्वभाव अच्छा है वह सर्वत्र आदरणीय बन जाता है, परन्तु जिसका स्वभाव अच्छा नहीं है, उसके जीवन में दया, दान, परोपकार, उदारता आदि अनेक गुण हों फिर भी वह अपने विचित्र स्वभाव के कारण पाया हुआ सब कुछ खो देता है ।

अपने स्वभाव को बदलना बहुत बड़ी बात है । अपने स्वभाव को व्यक्ति जल्दी नहीं छोड़ सकता है । अपने एक विचित्र स्वभाव के कारण यदि बात बिगड़ जाती हो या वातावरण बिगड़ जाता हो तो उस पर अवश्य विचार करना चाहिए । कइयों को अपना स्वभाव खराब है, पता ही नहीं चलता है । हर व्यक्ति अपने स्वभाव को अच्छा ही मानता है । अपने स्वभाव में यदि निम्न गुण रहे हुए हैं तो उसे हम अच्छा स्वभाव कह सकते हैं–

1) गुणग्राही स्वभाव :– सामने रहे व्यक्ति के जीवन में रहे दोषों की उपेक्षा करके एक मात्र गुणों की ओर दृष्टि करना, उसे गुणग्राही स्वभाव कहते हैं । मरे हुए कुत्ते के दाँतों को देखकर श्रीकृष्ण बोल उठे, **'अहो ! इसके दाँत कितने चमकीले हैं !'**

संसारी जीव तो दोषों की खान है, अतः उसमें दोषों का होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है । परन्तु उन दोषों के बीच भी कोई गुण दिखाई दे तो उसे आश्चर्य मानना चाहिए ।

किसी के भी गुण देखकर खुश होना, अच्छी आदत कहलाती है। जिसके पास गुणग्राही दृष्टि हैं, वह मात्र गुणों की ओर नजर करता है। गिद्ध आकाश में ऊँचाई पर उड़ता है, फिर भी उसे धरती पर रहे मुर्दे ही दिखाई देते हैं।

सूपड़े की ओर देखें, वह अनाज को ग्रहण कर लेता है और घास को उड़ा देता है।

हर व्यक्ति में गुण-दोष होते है, परन्तु गुणग्राही व्यक्ति उन गुणों को ग्रहण कर लेता है और दोषों की उपेक्षा करता है। गुण दृष्टिवाला सदैव खुश रह सकता है, क्योंकि उसे सर्वत्र अच्छा ही दिखाई देता है।

2) सहनशीलता का स्वभाव :– खान में से निकला एक सामान्य पत्थर भी भगवान की मूर्ति का रुप ले लेता है, उसका एक मात्र कारण पत्थर की सहनशीलता है। शिल्पी के छैनी और हथौड़े की मार को सहनकर ही पत्थर प्रतिमा का आकार लेता है।

कच्ची केरी चैत्र-वैशाख की भयंकर गर्मी को सहन करके ही आम बनती है।

आग की भयंकर गर्मी को सहनकर ही मिट्टी, घडा बनती है।

आग के ताप को सहन करके ही सोना, आभूषण बनता है।

एक सज्जन पुरुष का स्वभाव खूब सहनशील होता है। शारीरिक दुःखों को हँसते मुँह सहन करना, किसी के वाग्बाणों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करना, किसी के अपमान भरे शब्दों का प्रतिकार नहीं करना, यह सज्जन पुरुष का लक्षण कहलाता है। सहन करनेवाला ही साधु पुरुष कहलाता है।

सहनशीलता यह साधु का मुख्य गुण कहलाता है इसीलिए उन्हें **'क्षमाश्रमण'** पद से संबोधित करते हैं। जो सहन करता है, वह महान् बनता है।

3) साहसिक स्वभाव :– परिषह और उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करने के लिए साहसिक स्वभाव Bold Nature चाहिए। साधना मार्ग में आने वाले कष्टों को सहन करने का will-power जिसके पास है, वह व्यक्ति कष्टों से घबराता नहीं है।

22 मन कभी थकता नहीं है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 23-09-2019**

अपना मन अपनी विचारधारा से खूब प्रभावित होता है । मनुष्य की काया सतत सक्रिय नहीं होती है, वह कभी काम करती है तो कभी विश्राम भी करती है । मनुष्य अपनी वाणी का कभी प्रयोग करता है तो कभी मौन भी रहता है । परन्तु मानवीय मन तो सदैव Active रहता है । वह कुछ-न-कुछ सोचता रहता है । सतत काम करने पर भी आश्चर्य है कि यह मन कभी थकता नहीं है ।

मनुष्य अपने जीवन में सबसे अधिक दुःखी अपने विचारों से ही होता है । मनुष्य के विचार ही मनुष्य को सुखी और दुःखी बनाते हैं ।

विधेयात्मक विचारधारा Positive thinking वाला व्यक्ति हमेशा प्रसन्नता का अनुभव करता है । वह हमेशा आशावादी होता है । उसे अपने लक्ष्य में सफलता ही नजर आती है । जबकि कई व्यक्ति हर घटना में हर व्यक्ति में नकारात्मक पहलू को ही देखते हैं । उन्हें अपना भविष्य अंधकारमय ही दिखता है ।

Negative people will always criticize निषेधात्मक विचारधारा वाले व्यक्ति हमेशा हर वस्तु में दोष ही ढूँढते रहते हैं ।

वे पूनम के चाँद को भी देखेंगे तो कहेंगे **यह तो कलंकित है ।**

वे विशालकाय महासागर को देखेंगे तो भी कहेंगे– **अरे ! इसका पानी तो खारा है ।**

वे तालाब में खिले हुए कमलों को देखेंगे तो भी कहेंगे **इनके आस-पास तो कितना कीचड़ है ।**

वे लोग अत्यन्त तेजस्वी सूर्य को देखेंगे तो कहेंगे-**अहो ! यह तो कितना तीक्ष्ण है ! इसकी किरणें कितनी तेज हैं !**

ऐसे व्यक्ति किसी विद्वान् को देखेंगे तो भी कहेंगे यह व्यक्ति विद्वान् है किंतु साथ में कितना निर्धन है ।

ऐसे व्यक्ति किसी दानवीर को देखेंगे तो भी कहेंगे, **'यह तो अपने धन को कितना उड़ाता है ।'**

ऐसे व्यक्ति किसी अच्छे वक्ता को देखेंगे तो भी कहेंगे-`अरे ! इसे सिर्फ बोलना आता है । यह तो बोलता है, करता कुछ भी नहीं है । ऐसे व्यक्ति किसी शांत व्यक्ति को देखेंगे तो कहेंगे **'यह तो बिल्कुल कमजोर लगता है ।'**

निषेधात्मक विचारधारावाले व्यक्ति कुछ भी करने के लिए कुछ भी कदम उठाएंगे तो सर्वप्रथम उनका मन भावी असफलता की आशंकाओं से घिरा होता है । किसी भी कार्य के प्रारम्भ के बाद सफलता मिलना या न मिलना, भावी की बात है, परन्तु कमजोर दिलवाले या निषेधात्मक सोचवाले व्यक्तियों को तो पहले से निष्फलता ही नजर आती है । उनका मन पहले ही भयभीत होता है । कर्म का आरम्भ तो किया है परन्तु क्या पता, सफलता मिलेगी या नहीं ?

निषेधात्मक विचारधारा व्यक्ति के जीवन में हताशा लाती है । ऐसे व्यक्ति सफल होते हुए भी असफल ही होते हैं ।

अतः जीवन में शांति पाना है, कुछ कर गुजरना है, कुछ उपलब्धि हासिल करनी है तो अपने मन को विधेयात्मक विचार धारा से भावित करे । नकरात्मक विचारों से अपने मन को खाली कर दें ।

नकारात्मक विचारधारा वाले लोग जब किसी कार्य में असफलता हासिल करते हैं तो उसका अपयश वे दूसरों पर ढोलते हैं, उसने ऐसा किया, इसलिए मैं असफल Fail हुआ । इसी बात को वे दोहराते रहते हैं, परन्तु कभी भी अपनी कमजोरी को स्वीकार नहीं करते हैं । वे अपनी असफलता का दोषारोपण अपने जीवनसाथी या भाग्य पर डालते रहते हैं । जीवन में मानसिक शांति पाने के लिए अपने मन को विधेयात्मक विचारों से भर दो ।

23 मानव शरीर अशुचि से भरा है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 24-09-2019**

'उपमिति भव प्रपंचा' ग्रंथ के रचयिता श्री सिद्धर्षि गणी ने अपने मन का Xray निकाला है । केमरामेन फोटोग्राफर जो फोटो लेता है, वह तो बाहर की चमड़ी का फोटो होता है, जब कि X-Ray मशीन में तो जो भीतर होता है, वो ही बाहर आता है ।

हम बाहर कितने ही अच्छे, आराधक-साधक क्यों न दिखते हों लेकिन हमारे मन के भीतर तो गंदगी रही हुई है । उपमितिभव-प्रपंचाकार अपने मन को सूअर की उपमा दे रहे हैं । जिस प्रकार सूअर को दूधपाक का आकर्षण नहीं होता है, परन्तु एक और विष्टा पड़ी हो तो वह उसी ओर दौड़ता है ।

अपने मन की भी यही स्थिति है, वह भी पाँच इन्द्रियों के विषयरुपी अशुचि में ही डूबना चाहता है ।

फर्क इतना ही है कि सूअर को खुली विष्टा का आकर्षण होता है, जबकि मानवीय मन को मल-मूत्र से भरी थैली समान शरीर का आकर्षण है । अनादि काल से हर आत्मा के भीतर मैथुन संज्ञा रही हुई है । उस संज्ञा के कारण हर आत्मा में एक विजातीय आकर्षण रहा हुआ है ।

मानवीय शरीर, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री का हो, उसके भीतर अत्यधिक प्रमाण में अशुचि रही हुई है ।

गटर में जैसे गंदगी होती है, वैसी गंदगी मानव-शरीर के भीतर रही हुई है । जिस प्रकार खुली गटर के पास हम 10 मिनिट के लिए भी ठहर नहीं पाते हैं, वहाँ हमें भयंकर दुर्गंध आती है, उसी प्रकार मानव शरीर के भीतर भी वो ही गंदगी रही हुई है । फर्क इतना ही है कि उसके ऊपर चमड़ी का एक आवरण आया हुआ है ।

वह चमड़ी गौरी होने से हम भीतर की गंदगी को भूल जाते हैं ।

और उस गौरी चमड़ी के कारण अशुचि से भरी उस थैली पर मोहित हो जाते हैं ।

वास्तव में मोह का यह कैसा अंधापा है । सच मायने में मानव शरीर रूपी थैली को उल्टा कर दिया जाय तो हम एक क्षण भी उसके पास खड़े नहीं रह सकते हैं ।

दुनिया के कारखाने अच्छे हैं, जिनमें Raw material के रुप में हल्का माल डालते हैं और उनमें से तैयार होकर Best माल बाहर आता है । जबकि मानवीय शरीर एक ऐसा विचित्र कारखाना है जिसमें First Class माल डालते हैं और वह उसे Third Class बना देता है ।

Best को Waste करने का काम मानव-शरीर करता है । First Class माल को Third Class बनाने का काम यह मानव शरीर करता है ।

मानव शरीर से पशु का शरीर श्रेष्ठ है, जो तुच्छ भोजन लेकर भी श्रेष्ठ पदार्थ देते हैं । गाय घास खाती है और बदले में दूध देती है । जबकि मानव सर्वश्रेष्ठ और ऊँचे-ऊँचे पक्वान्न खाता है और विष्टा पैदा करता है ।

गाय की विष्ठा-गोबर भी ईंधन के रूप में काम लगती है और उस गोबर की राख बर्तन साफ करने के काम आती है, जब कि मानव शरीर की विष्ठा को कोई देखने या छूने के लिए तैयार नहीं है ।

जब कोई अच्छी वस्तु मानव शरीर के संपर्क में आती है, उसे वह बिगाड़ने का ही काम करता है । कपडे के शोरूम में पुतले को नए कपड़े पहनाते हैं, परंतु उन कपड़ों को धोते नहीं है, परंतु वो ही कपड़े मानव-शरीर पर धारण करने के बाद कुछ ही घंटों में उन कपड़ों में से भी दुर्गंध आने लगती है । अपने संपर्क में आनेवाली वस्तु को बिगाड़ने का काम एवं मूल्यहीन बनाने का काम मानव-शरीर करता है, फिर भी आश्चर्य है कि हमें, उसी शरीर का आकर्षण होता है ।

24

प्रमाद छोड़ें

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 25-09-2019**

आत्मसाधना के मार्ग में आगे बढ़ने में प्रमाद एक भयंकर शत्रु है। प्रमादी व्यक्ति अपने जीवन में धर्मसाधना नहीं कर पाता है। प्रमाद में व्यक्ति अपना अमूल्य समय व्यर्थ ही गवाँ देता है। प्रमाद के मुख्य 5 भेद हैं। मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और विकथा।

1) मद्य : शराब आदि का व्यसनी व्यक्ति अच्छी तरह से धर्मसाधना नहीं कर पाता है। शराब आदि के व्यसनी व्यक्ति को भोजन बिना चल सकता है, परन्तु शराब के बिना नहीं चलता है। नशाखोर व्यक्ति जिनवाणी का श्रवण भी नहीं कर पाएगा। द्वारिका का नाश इसी शराब के कारण हुआ था।

2) विषय : पाँच इन्द्रियों के विषयों में अर्थात् शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में जो अत्यन्त ही आसक्त है, वह भी सद्धर्म की आराधना नहीं कर पाता है। एक-एक इन्द्रिय के विषय की पराधीनता के कारण हाथी, मछली, भ्रमर, पतंगा और हिरण को मौत के घाट उतरना पड़ता हैं तो जो मनुष्य पाँच इन्द्रियों का गुलाम होगा, उसकी क्या हालत होगी।

ठीक ही कहा है–इन्द्रियों का असंयम पतन का मार्ग है और इन्द्रियों का संयम उत्थान का मार्ग है। इन्द्रियों की पराधीनता हमें धर्मश्रवण और धर्म के आचरण से वंचित रखती है।

3) कषाय : क्रोध-मान-माया और लोभ रूप से चार कषाय तो अपने आत्म धन को लूटने वाले प्रबल चोर हैं। ये स्वतंत्र रूप में भी धर्मश्रवण और धर्म आचरण में बाधक हैं, अतः साधक आत्मा को इनसे बचने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करना चाहिए।

4) निद्रा : निद्रा हमारे अमूल्य समय को खा जाती है। निद्रा में हमारा कितना समय निकल जाता है। यद्यपि दर्शनावरणीय कर्म के

उदय के कारण नींद आती है, फिर भी प्रयत्न और पुरुषार्थ द्वारा उसे कम किया जा सकता है ।

ठीक ही कहा है – आहार और निद्रा बढ़ाने से बढ़ते हैं और घटाने से घटते हैं । दर्शनावरणीय कर्म के उदय के कारण नींद आती है, फिर भी प्रयत्न द्वारा उसे घटाया जा सकता है ।

ऋषभदेव प्रभु का 1000 वर्ष में प्रमाद (निद्राकाल), 1 अहोरात्र था, जबकि भगवान महावीर का 12½ वर्ष में निद्राकाल 1 अन्तर्मुहूर्त मात्र था ।

निद्रा रूपी प्रमाद के अधीन बने चौदह-पूर्वधर महर्षि भी अनंतकाल के लिए निगोद में चले जाते हैं तो हे जीव ! तुम्हारी क्या हालत होगी, जरा विचार कर !

कई लोग खूब निद्रालु होते हैं, उन्हें खूब नींद आती है । काफी समय बीतने पर भी उठने का नाम ही नहीं लेते हैं । प्रवचन आदि में भी उन्हें नींद आती रहती है ।

5) विकथा : प्रमाद का 5 वाँ भेद है, विकथा । विकथा अर्थात् विपरीत कथा । धर्मकथा एक प्रकार का स्वाध्याय है और आत्मा के लिए एकांत हितकर है, जबकि यह विकथा आत्मा को आत्महित से दूर-सुदूर ले जाती है । इसमें चार प्रकार की कथा अर्थात् बातचीत आती है । स्त्री कथा, भक्त कथा, देश कथा और राज कथा ।

स्त्री के रूप सौंदर्य की बातें करना, भोजन के स्वाद संबंधी बातें करना, किसी देश संबंधी निरर्थक बातें करना और राजनीति संबंधी बेकार की बातें करना उसे विकथा कहते हैं ।

Never miss an opportunity of giving donation as donation is the first step towards religion and helps to accumulate Punya

25

मोह खतरनाक है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 26-09-2019**

मोह आत्मा का भयंकर शत्रु है । आत्मा को इस संसार में भटकाने वाला मोह ही है । राग और द्वेष ये दोनों मोह की संतानें हैं । मोह आत्मा को भ्रमित करता है । मोह के कारण ही जो सुख के साधन हैं, वे दुःख के साधन लगते हैं और जो दुःख के साधन हैं, वे सुख के साधन लगते हैं ।

संसार के भौतिक सुख जो क्षणिक हैं, त्याज्य हैं, वे शाश्वत लगते है–उपादेय लगते है । महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म. ने ठीक ही कहा है-**'जगत् के जीवों को अंध बनाने वाले मोह राजा का यह मंत्र है-अंहकार और ममकार । अहंकार और ममकार के कारण जगत् के सभी जीव मोहांध बने हुए हैं ।'**

अहंकार अर्थात् अभिमान ! ममकार अर्थात् ममत्व भाव ! जगत् के बाह्य जड़ पदार्थ कभी अपने हुए नहीं हैं, फिर भी उन पदार्थों को अपना मानना यह झूठा ममत्व है ।

इस ममत्व भाव के कारण जीवात्मा उन जड़ पदार्थों का स्वामित्व प्राप्त करने के लिए रात और दिन प्रयत्न करती रहती है । उन जड़ पदार्थों के संग्रह में वह खुश होती है । उन पदार्थों की वृद्धि में वह आनंदित होती है । उन जड़ पदार्थों को पाने के लिए वह भयंकर युद्ध भी खेलती है ।

एक मात्र सेचनक हाथी और मूल्यवान हार को पाने के लिए कोणिक ने अपने सगे भाई हल्ल-विहल्ल और मामा चेटक के साथ भयंकर युद्ध खेला था ।

यह जमीन, यह राज्य, यह धन कभी आत्मा का हुआ नहीं है फिर भी उनके प्रति रहे मोह के कारण आत्मा भयंकर युद्ध करने के लिए भी तैयार हो जाती है ।

ज्ञान, दर्शन आदि आत्मा के गुण हैं, आत्मा की संपत्ति हैं, परन्तु मोह की अधीनता के कारण आत्मा उस संपत्ति की तो उपेक्षा करती है और धन-सत्ता-स्त्री आदि पाने के लिए रात और दिन प्रयत्न करती रहती है ।

जिस प्रकार अंधे व्यक्ति को कुछ भी दिखाई नहीं देता है, उसी प्रकार मोह से अंध बनी आत्मा को वास्तविकता का भान नहीं होता है ।

मैं शुद्ध आत्मद्रव्य हूँ और निर्मल ज्ञान मेरा गुण है । मैं ज्ञानादि गुणों से भिन्न नहीं हूँ, और ज्ञान आदि से भिन्न पदार्थ मेरे नहीं हैं । सचमुच, यह मोह को नष्ट करने का प्रबल शस्त्र है । मोह के उदय के कारण ही जीवात्मा को जड़ पदार्थों में ममत्व बुद्धि पैदा होती है । मोह का जोर उतर जाय तो आत्मा के मूलभूत ज्ञान आदि गुणों में प्रीति पैदा होती है ।

यह मोह जिनवाणी के श्रवण में भी बाधक बनता है । गुरु भगवन्त का उपदेश चलता हो, उस उपदेश के श्रवण की अनुकूलता भी हो, परन्तु मोहाधीन आत्मा यही सोचती है व्यापार में ध्यान देंगे तो धन मिलेगा, व्याख्यान सुनने से थोड़े ही रोटी मिलने वाली है ।

मोह का उदय जीवात्मा को जिनवाणी से वंचित रखता है । मोह के उदयवाली आत्मा जिनेश्वर भगवन्त के बताए हुए मार्ग पर चलने के लिए तैयार नहीं होती है ।

मोहाधीन आत्मा धर्म और धर्म के साधनों से दूर ही भागती है ।

कारण

किसी भी कार्य की सिद्धि के लिए उपादान और निमित्त दोनों कारण व्यवस्थित चाहिये ।
उपादान सही हैं लेकिन निमित्त बलवान् नहीं हैं तो भी कार्य सिद्ध नहीं होगा ।
निमित्त बलवान् हैं, किंतु उपादान कारण सही नहीं हैं तो भी कार्य सिद्ध नहीं होगा ।

26 मन के जीते जीत है ।

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 27-09-2019**

मानवीय मन की सबसे बड़ी कमजोरी है कि उसे खुद का थोड़ा भी दुःख खूब ज्यादा लगता है और इसी कारण हर व्यक्ति को अपना दुःख असह्य लगता है । परन्तु इसके स्थान पर यदि हम अपने से अधिक दुःखी व्यक्ति की ओर अपनी नजर करेंगे । तो हमें अपना दुःख हल्का लगे बिना नहीं रहेगा ।

मन की अस्थिरता यह सबसे बड़ी समस्या है । वायु की भाँति यह मन अत्यन्त ही अस्थिर है । चंचल मन का निग्रह करने का उपाय है-अभ्यास और वैराग्य । फिल्म, विदेशी टी.वी.चैनले, श्रृंगाररस या यौन विषयक पत्र–पत्रिकाओं को पढ़ने से मन की चंचलता और अधिक बढ़ जाती है । मनन करना-चिंतन करना मन का स्वभाव है । मन को वश करने का अर्थ है, उसे मनमानी करने नहीं देना । एकाग्र मन ही शक्तिशाली होता है, अन्यथा वह कमजोर होता है । Empty Mind is devil's workshop खाली दिमाग शैतान का घर । मन को अच्छे विचारों में व्यस्त रखना जरूरी है ।

देवों को भी दुर्लभ ऐसा मानव जन्म मिला है, परन्तु इस जीवन का महत्त्व समझने वाले और जीवन का वास्तविक आनंद पानेवाले कोई विरले ही दिखाई देते हैं । अधिकांश लोगों का जीवन मानसिक अशांति से घिरा होता है ।

सब कुछ है, मगर जीवन में शांति नहीं है, लगभग यही समस्या अधिकांश लोगों की होती है । जीवन जीते हैं मगर जीवन का कोई लक्ष्य नहीं !

लक्ष्यविहीनता की इस स्थिति के पीछे अनेक कारण भी हैं ।

1) निराशावादी दृष्टिकोण :– कई व्यक्ति जीवन में खूब हताश और निराश होते हैं, उन्हें सर्वत्र असफलता ही नजर आती है, अतः

कुछ भी कर गुजरने की न उन्हें कोई इच्छा होती है और न ही उनका कोई प्रयत्न होता है । कार्य प्रारम्भ करने के पूर्व ही उन्हें असफलता ही नजर आती है, अतः कुछ भी करने की उनमें उत्कंठा नहीं होती है ।

2) असफलता का डर :– कई व्यक्ति इतने कायर और डरपोक होते है कि अभी तो कार्य का प्रारम्भ हुआ हो, परन्तु उन्हें सफलता के बदले असफलता ही नजर आती है । असफलता का उन्हें इतना अधिक भय होता है कि उस भय के कारण वे अपना कदम उठाने में सदैव हिचकिचाहट का ही अनुभव करते हैं ।

3) आत्मविश्वास की कमी : अनेक के जीवन में आत्मविश्वास की बहुत बड़ी कमी देखने को मिलती है और इसी कमी के कारण वे कदम ही नहीं उठा पाते है । यद्यपि कार्य कठिन न हो, फिर भी सफलता पाने के लिए आत्म विश्वास तो चाहिए ही, परन्तु इसकी कमी के कारण कुछ भी कर गुजरना उनके लिए मुश्किल ही होता है ।

4) लक्ष्य का महत्त्व नहीं : यह अमूल्य जीवन मिला है तो इसका कुछ लक्ष्य होना चाहिए । परन्तु कई व्यक्तियों का जीवन लक्ष्यहीन होता है । जीवन का अमूल्य समय बीत जाने के बाद भी उन्हें अपने जीवन का कोई लक्ष्य नहीं होता है ।

नियम जरुरी है ।

रत्नों की सुरक्षा के लिए लॉकर जरुरी है । घर की सुरक्षा के लिए ताला जरुरी है । प्रधान मंत्री की सुरक्षा के लिए बोडीगार्ड जरुरी है । खेत की सुरक्षा के लिए कांटों की बाड जरुरी है । बस, इसी प्रकार जीवन की सुरक्षा के लिए नियम जरुरी है । *नियम बिना का जीवन तो ब्रेक बिना की गाडी जैसा है ।*
ब्रेक वाली गाडी आपको सुरक्षित पहुंचाती है ।
ब्रेक बिना की गाडी आपको ऊपर पहुँचाती है ।

27

कायोत्सर्ग की साधना

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 28-09-2019**

कायोत्सर्ग में काया की ममता का त्याग किया जाता है । कायोत्सर्ग के 19 दोष बतलाए हैं, उन दोषों से मुक्त होकर कायोत्सर्ग करना चाहिए । देव, मनुष्य और तिर्यंच संबंधी उपसर्गों को प्रसन्नतापूर्वक सहन करने वाले का कायोत्सर्ग शुद्ध होता है ।

सीतेन्द्र के अनुकूल उपसर्गों में लेश भी विचलित नहीं होनेवाले रामचन्द्रजी को वंदन हो ।

एक वर्ष वृक्ष की भाँति कायोत्सर्ग में स्थिर रहे बाहुबली मुनि को वंदन हो ।

पूरी रात घोर दिव्य उपसर्गों से भी विचलित नहीं होनेवाले कामदेव श्रावक की हार्दिक अनुमोदना !

अभया रानी के झूठे आरोप के बाद भी कायोत्सर्ग में स्थिर रहनेवाले सुदर्शन सेठ को सादर वंदन ।

मस्तक पर धधकते अंगारे होने पर भी कायोत्सर्ग में स्थिर रहकर मोक्ष पद पाने वाले गजसुकुमाल मुनि को वंदन ।

दृढ़प्रहारी ने चार-चार जीवों की हत्या करके भयंकर कर्मों का उपार्जन किया था, परन्तु तप धर्म के प्रभाव से उसने सभी कठोर कर्मों को दूर कर दिया था ।

हृदय रूपी घट में समताभाव को धारण करके तप धर्म की आराधना करनी चाहिये । जो तप रूपी विकराल तलवार को हाथ में लेकर कर्म रूपी शत्रुओं से लड़ता है, वह अवश्य विजयश्री प्राप्त करता है । लेकिन जो खा-पीकर मोज-मस्ती कर मोक्ष पाने की बातें करते हैं, वे तो मूर्खों के सरदार ही हैं ।

आश्चर्य की बात है कि तप करना यह प्रवाह के सामने तरने जैसा है, फिर भी आत्मा इस भवसागर से पार उतर जाती है ।

अनादि काल से आत्मा कर्म की संगति के कारण आहार में आसक्त है । अनादि की आहार संज्ञा को तोड़ने के लिए तप धर्म का सेवन करना चाहिये । आत्मा के साथ जो पुराने कर्म लगे हैं, वे सब तप के सेवन से दूर हो जाते है । जिस आत्मा में कर्म का वियोग हो जाता है, वह आत्मा इस संसार में भटकती नहीं है । कर्मों का क्षय करने के लिए तप के समान दूसरा कोई साधन नहीं है ।

ध्यान रूपी अभ्यंतर तप द्वारा आत्मा सभी कर्मों को जलाकर भस्मीभूत कर देती है, जिसके फलस्वरूप आत्मा शीघ्र मुक्ति रुपी कन्या को वरती है ।

तप गुण से विघ्नों का नाश होता है । तप से विकार दूर होते हैं । धन्ना अणगार ने अपने जीवन में जो विशिष्ट कोटि की तपश्चर्या की थी, उनके इस तप के कारण भगवान महावीर प्रभु ने अपने मुख से उनकी प्रशंसा की थी ।

तपस्या करने से आत्मा विजय का डंका बजाती है । तप का उद्यापन करने से शासन शोभा में अभिवृद्धि होती है । वीर्योल्लास बढ़ता है और कर्मों की निर्जरा होती है ।

तपश्चर्या करने से अणिमा आदि आठ सिद्धियों तथा अट्ठाईस प्रकार की लब्धियों की भी प्राप्ति होती है ।

तप के प्रभाव से ही विष्णुकुमार आदि मुनियों को विशिष्ट लब्धि पैदा हुई थी । तप के प्रभाव से विष्णुकुमार आदि ही तरह व्यक्ति जगत् में यश प्राप्त करता है । तप के प्रभाव से ही प्राप्त हुई लब्धि के बल से गौतम स्वामी अष्टापद पर्वत पर चढ़ सके थे और उन्होंने अक्षीणमहानसी लब्धि द्वारा थोड़ी सी खीर होने पर भी 1500 तापसों को खीर से पारणा कराया था । क्षमा धर्म के साथ जो मुनि तप करता है, वह अपने निकाचित कर्मों को भी जलाकर साफ कर देता है ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद महावीर प्रभु ने 12½ वर्ष तक अखंड तप किया था । उस तप दरम्यान भगवान भूमि पर बैठे भी नहीं थे । घोर तप द्वारा प्रभु ने केवलज्ञान प्राप्त किया था ।

28

परमात्म-भक्ति

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 29-09-2019**

आहार अपने मन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है । सात्त्विक आहार सात्त्विक विचारों को और तामसी आहार तामसी विचारों को पैदा करता है ।

उसी प्रकार आँख के माध्यम से हम जो दृश्य देखते हैं, वह शुभ-अशुभ दृश्य भी हमारे मन को प्रभावित किए बिना नहीं रहता है । T.V के पर्दे पर आने वाले अश्लील दृश्य हमारे मन में विकार वासनाओं को उत्तेजित किए बिना नहीं रहते हैं, तो शुभ दृश्य हमारे मन में शुभ भाव पैदा क्यों नहीं करेंगे ?

वीतराग अवस्था में रही जिन प्रतिमा हमें विराग भाव को जगाने की प्रेरणा देती है । बाह्य भौतिक पदार्थों में सुख नहीं है, सुख तो त्याग भाव में रहा हुआ है । वीतराग की प्रतिमा हमें सतत यह संदेश सुनाती है । इसलिए परम आनंद के अभिलाषी हर भक्त को नियमित रूप से प्रभु के दर्शन व पूजन अवश्य करने चाहिए ।

नवनिर्मित पाषाण के जिनमंदिर में वीतराग परमात्मा की प्रतिष्ठा तभी सफल व सार्थक बनती है जब उस प्रतिष्ठा के साथ अपने हृदय मंदिर में भी प्रभु की प्रतिष्ठा होती है ।

अपने हृदय मंदिर में प्रभु की प्रतिष्ठा करना, इसका तात्पर्य है **'प्रभु की आज्ञाओं को अपने हृदय में बसाना ।'**

अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष आदि जो-जो प्रभु की आज्ञाएँ हैं, उन आज्ञाओं के प्रति हृदय में प्रेम पैदा होना और यथाशक्य उन आज्ञाओं के पालन के लिए प्रयत्नशील बनना, यही वास्तव में प्रभु की सच्ची प्रतिष्ठा है । हृदय मंदिर में प्रभु की प्रतिष्ठा करने के लिए हृदय को सरल व निर्मल बनाना अत्यन्त ही आवश्यक है ।

एक कुशल शिल्पी पाषाण में से प्रभु की मूर्ति का निर्माण कर सकता है, परन्तु उस मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा का कार्य तो परम साधक, परम पवित्र मुक्ति मार्ग के संवाहक आचार्य भगवन्त ही करते हैं । वीतराग परमात्मा की प्राण-प्रतिष्ठा अर्थात् प्रभु के पंच कल्याणक के विशिष्ट विधि विधान एवं मंत्रोच्चार पूर्वक अंजनशलाका विधान ।

अंजनशलाका के माध्यम से पूज्य आचार्य भगवन्त जिनप्रतिमा में भगवद्भाव का आरोपण करते हैं । उसके बाद प्रतिमा का प्रभाव खूब-खूब बढ़ जाता है ।

जैन आगम-शास्त्रों में जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा को जिनेश्वर तुल्य माना गया है । अर्थात् जिनेश्वर प्रतिमा की पूजा-भक्ति यह साक्षात् जिनेश्वर की भक्ति है और जिन प्रतिमा का अनादर तिरस्कार या आशातना यह साक्षात् जिनेश्वर परमात्मा की ही आशातना है । इस पंचम काल में जिन प्रतिमा के माध्यम से ही हमें जिनेश्वर परमात्मा का साक्षात् परिचय एवं उनकी सेवा-पूजा एवं भक्ति का लाभ प्राप्त होता है ।

स्वच्छ मन

मन की स्वच्छता के लिए राग-द्वेष की कालिमा को
दूर करना, अत्यंत ही जरुरी है ।
राग को दूर करना हो तो
माया और लोभ को दूर करना जरुरी है,
और द्वेष को दूर करना हो तो
क्रोध और मान को दूर करना जरुरी है ।
जहां क्रोध और मान का अस्तित्व होगा,
वहां यह द्वेष, हृदय-सिंहासन पर
प्रतिष्ठित हुए बिना नहीं रहेगा ।

29 ईर्ष्यालु अन्य का विकास नहीं देख सकता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 30-09-2019**

आत्मा के अनादि काल से संसार-परिभ्रमण के मुख्य दो कारण हैं– राग और द्वेष । इन दोनों शत्रुओं का पराजय करके ही आत्मा अपने शुद्ध स्वभाव को प्राप्त कर सकती है ।

राग और द्वेष को जीतना तो दूर, हम उन्हें पहिचान भी नहीं सकते हैं । प्रेम, लगाव, स्नेह आदि राग हैं, तो ईर्ष्या, क्रोध, माया आदि द्वेष हैं ।

जैसे मैदान में दौड़ की प्रतियोगिता का प्रारंभ करते समय सभी एक साथ दौडते है, परंतु दौड़ते-दौड़ते कोई आगे, तो कोई पीछे रह जाता है । अन्य प्रतियोगी हमसे पीछे रहें, यही सभी की इच्छा होती है, परंतु जब कोई आगे बढ़ जाता है, तब आगे बढने वाले के प्रति पीछे रहने वाले को ईर्ष्या-जलन और द्वेष होता है ।

वैसे ही आत्म-विकास के मार्ग में आगे बढ़ते समय दूसरों की आबादी और गुणप्राप्ति में विकास को देखकर ईर्ष्या भाव आ जाता है । ईर्ष्या नाम की यह नागिन ऐसी है, जिसके डसने पर व्यक्ति सामने रहे व्यक्ति के दोषों का ही दर्शन करता है । गुणों की बहुलता होने पर भी जिसके प्रति द्वेष भाव-ईर्ष्या भाव रहा हो, वह उसमें दोष ही देखेगा ।

हमारे स्वभाव की विचित्रता है कि हम हमेशा गुण का दर्शन करने के लिए आईना अपने सामने रखते हैं और दोष के दर्शन करने सूक्ष्म-दर्शन यंत्र लेकर अन्य को ही देखते हैं । स्वगुण-दर्शन एवं पर-दोष-दर्शन की वृत्ति ही हमारे परम दुःख का कारण है ।

अपने से आगे बढ़ते व्यक्ति को देखकर खुश होना चाहिए । किसी गुण को पाना अत्यंत ही कठिन है । गुणवान बनना फिर भी आसान है परंतु गुणवान को देखकर गुणानुराग का गुण पाना आसान नहीं है ।

गुणानुराग के अभाव में जब ईर्ष्या हावी हो जाती है, तब ईर्ष्यालु व्यक्ति उसे नीचे गिराने के लिए हर संभव प्रयत्न करने के लिए तैयार हो जाता है । जब अन्य की लकीर आगे चली जाती है, तब अन्य की लकीर को मिटाने के लिए ईर्ष्यालु व्यक्ति तैयार हो जाता है ।

जैसे रेलगाड़ी में इंजिन के पीछे रहे अन्य सारे डिब्बे पीछे-पीछे चले आते हैं, वैसे ही ईर्ष्या के पाप का मन में प्रवेश होने पर गुरुअवज्ञा, क्रोध, माया, झूठ आदि पाप पीछे चले आते हैं । आत्मा अधोपतन के गर्त में गिर जाती है ।

पढ़-लिखकर ज्ञानी बनना आसान है, अपने शरीर की परवाह किये बिना सेवा-शुश्रूषा करके वैयावच्च का गुण पाना भी आसान है, प्रभावक प्रवचनकार और तपस्वी बनना आसान है, परंतु अन्य के गुणों को देखकर मन में प्रमोद भाव पाना अति कठिन है ।

आत्मा न तो पुरुष है न स्त्री । फिर भी कर्म के वश किसी जन्म में पुरुष बनती है तो किसी जन्म में स्त्री । हर व्यक्ति पुरुष बनना पसंद करता है, परंतु ईर्ष्या के पाप के कारण आत्मा को स्त्री के रूप में जन्म लेना पड़ता है ।

भूतकाल में हमें ऐसे अनेक प्रसंग देखने को मिलते हैं, जिनमें ईर्ष्या के पापाचरण से ऊपर चढ़े हुए अनेक महात्माओं का भी पतन हुआ है । तथा अनेक महासतियों के जीवन में भी प्राणांत कष्टों को सहन करने में निमित्त बना है यह ईर्ष्या का पाप ।

हमें हमारे जीवन को विकास के मार्ग पर ले जाने के लिए ईर्ष्या का त्याग कर, सभी जीवों के प्रति मैत्री एवं प्रमोद भाव लाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

It is important to have right knowledge and intellect to be able to take right decisions.

30 सतत पुरुषार्थ जरूरी है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 01-10-2019**

आत्मा का मूल स्वभाव तो अणाहारी है । कर्मों के बंधनों से मुक्त बनी आत्मा को कभी भी आहार लेने की आवश्यकता नहीं रहती है । परंतु कर्मों से बंधी आत्माओं को संसार में प्रतिदिन आहार ग्रहण करना पड़ता है । आहार, भय, मैथुन और परिग्रह के गाढ़ संस्कार सभी संसारी आत्माओं पर अनादि काल से लगे हुए हैं ।

एक गति से दूसरी गति में जाते समय आत्मा अपने स्वजन-संबंधी, घर-परिवार, यावत् शरीर छोड़ कर चली जाती है, परंतु जीवनभर जिस कार्य का आचरण किया है, उसके संस्कार साथ चलते हैं । बार-बार भोजन करने के संस्कार यही निर्देश करते हैं, कि जीवात्मा ने पूर्व के पशु के जन्म में खाने का ही काम किया है ।

अपने जातिबंधु से लड़ने वाले व्यक्ति को देख कहते है कि ये कुत्ते की तरह लड़ते हैं । जातिबंधु से लड़ने के संस्कार कुत्ते के जीवन में विशेष रूप से दिखते हैं ।

जन्म-जन्मों तक साथ चलने वाले इन संस्कारों के बंधनों को तोड़ना अत्यंत ही कठिन है । इसलिए सर्वज्ञ परमात्मा ने परिग्रह के संस्कारों को तोड़ने के लिए दान धर्म, मैथुन के संस्कारों को तोड़ने के लिए शील धर्म, आहार के संस्कारों को तोड़ने के लिए तप धर्म एवं भय के संस्कारों को तोड़ने के लिए भाव धर्म का उपदेश दिया है ।

छोटे पौधे या घास के तिनके को तोड़ना आसान है, परंतु विशाल वट वृक्ष को तोड़ने हेतु कुल्हाड़ी के तीव्र प्रहार करने पड़ते हैं । वैसे ही हमारी आत्मा पर कुसंस्कारों का प्रभाव विशाल वटवृक्ष की तरह मजबूत है । इन्हें तोड़ने के लिए अल्प प्रयास नहीं बल्कि भरसक प्रयत्न करना पड़ता हैं ।

दान, शील और तप धर्म की आराधना के साथ जब भाव धर्म का संयोग होता है, तब अल्प प्रयास मात्र से ही आत्मा अपने अजर, अमर और शुद्ध स्वरूप को प्राप्त करने में समर्थ बनती है ।

भाव धर्म मन का विषय है और मन को जीतना अत्यंत कठिन है । फिर भी प्रयत्न करने से मन को जीता जा सकता है । सतत शुभ पुरुषार्थ करने वाले के लिए कुछ भी कठिन नहीं है । मन को जीतने के लिए सतत दान, शील और तप की साधना में प्रयत्न करना चाहिए ।

कोई व्यक्ति यह सोचे कि जब मुझे तैरना आएगा तभी मैं पानी में प्रवेश करूंगा । ऐसा संकल्प करने वाले को कभी तैरने की कला प्राप्त नहीं हो सकती है । वैसे ही मन पर विजय पाने के बाद ही मैं धर्म का आचरण करूंगा, ऐसा विचार करने वाले का उद्धार कभी नहीं हो सकता है ।

आत्मा पर कुसंस्कारों का साम्राज्य भले ही गाढ़ क्यों न हो, सतत प्रयत्न करने से उन्हें भी मिटाया जा सकता है । हमारी आत्मा पर अच्छे संस्कार चॉक से लिखे अक्षरों की तरह हैं जबकि कुसंस्कार, शिलालेख के समान हैं । यदि हम इस जन्म में प्राप्त हुई शक्ति से पुरुषार्थ करें तो अच्छे संस्कारों को भी शिलालेख की तरह दृढ़ कर सकते हैं ।

हमें प्राप्त हुई पाँच इन्द्रियों में रसना सबसे बलवान है । इसको जीतने पर अन्य सभी इन्द्रियों पर सहजता से विजय प्राप्त हो सकती है । रसनेन्द्रिय पर विजय पाने के लिए आयंबिल का तप सर्व श्रेष्ठ है, जिसमें निःस्वाद भोजन होने से शरीर को पोषण मिलता है परंतु रसनेन्द्रिय की लोलुपता पर अंकुश आता है ।

31

संपूर्ण धर्म की आराधना मनुष्य-जन्म में ही संभव है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 02-10-2019**

चार गति रूप संसार में नरक और देवगति के जीवों को वैक्रिय शरीर होने से उनके जीवन में धर्म की आराधना भी शक्य नहीं है । धर्मी देवता प्रतिपल मनुष्य-जन्म की इच्छा करते है, क्योंकि पापक्रिया के त्याग स्वरूप सर्व विरति धर्म की आराधना मात्र मनुष्य ही कर सकते हैं ।

इन्द्र महाराजा भी जब इन्द्रसभा में अपने सिंहासन पर बैठते है, तब विरति धर्म और विरति धर्म के समस्त आराधकों को वंदन करते हैं क्योंकि वे मानते हैं कि आज मुझे जो भी सुख-समृद्धि और वैभव प्राप्त हुआ है, वह सब धर्म की आराधना का ही फल है ।

देवता अपनी दिव्य शक्ति से परमात्मा की श्रेष्ठतम भक्ति-पूजा महोत्सव कर सकते हैं । देवता द्वारा की गई भक्ति-महोत्सव के आंशिक अनुकरण की भी शक्ति मनुष्य में नहीं है । फिर भी पाप कार्य के संपूर्ण त्याग स्वरूप सर्वविरति एवं इतना शक्य न हो तो पाप कार्य के आंशिक त्याग रूप देशविरति धर्म की आराधना मनुष्य कर सकते हैं ।

पशु जीवन में पापकार्य के आंशिक त्याग स्वरूप देशविरति धर्म की आराधना का निषेध नहीं है, परंतु पशुओं के जीवन में पराधीनता, अज्ञानता एवं भूख की बहुलता के कारण प्रायः पशु का जीवन भोजन की खोज में ही पूरा हो जाता है । अतः धर्म की आराधना पशुओं को भी संभव नहीं है ।

संपूर्ण धर्म की आराधना मात्र मनुष्य जन्म में ही हो सकती है । धर्म की आराधना के लिए सर्वश्रेष्ठ आलंबन अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप स्वरूप नवपदों की आराधना है ।

इन नवपदों की आराधना जीवात्मा को समस्त कर्मों से मुक्त कराने में समर्थ है । वर्षभर में आसोज और चैत्र मास की सप्तमी से पूर्णिमा तक इन नौ पदों की आराधना नौ आयंबिल तप के साथ त्रिकाल देववंदन, दोबार प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रदक्षिणा, खमासमण, स्वस्तिक की रचना आदि से विशेष भावपूर्वक करनी चाहिए ।

जिनेश्वर परमात्मा ने इन नौ पदों को सर्वश्रेष्ठ एवं अत्यंत ही सारभूत बताया है । इन नौ पदों में समग्र जैन शासन का समवतार हो जाता है । इन नौपदों को छोड़कर इस जगत् में कोई श्रेष्ठ तत्त्व या आराध्य पद नहीं है ।

नवपदों की आराधना के लिए योग्यता पाने हेतु हमें अपने जीवन में खंतो, दंतो और संतो के गुणों को आत्मसात् करना चाहिए ।

खंतो यानी क्षमावान्, क्रोधादि कषायों को जीतनेवाला ।

दंतो यानी इन्द्रियो का विजेता, पाँच इन्द्रियों को अपने वश में रखकर संयमित जीवन जीने वाला एवं

संतो यानी मानसिक विकारों से मुक्त होकर मन में शुभ भावनाओं को भावित करने वाला ।

वैसे तो नवपदों की आराधना के द्वारा भूतकाल में अनंत आत्माओं ने मोक्ष प्राप्त किया है । फिर भी नवपद की सर्वश्रेष्ठ आराधना करके श्रीपाल महाराजा एवं मयणासुंदरी ने इस लोक में राज्य एवं सुख समृद्धि, परलोक में देवादि गतियों की शुभ परंपरा एवं परंपरा से मुक्ति-प्राप्ति का श्रेष्ठ आलंबन दिया है ।

इस नवपदों की आराधना से दुष्ट कोढ़, क्षय, भगंदर आदि भयंकर महारोग नष्ट हो जाते हैं । उसे भवांतर में दासपना, नौकरपना, अंगों की विकलता, दौर्भाग्यादि दोष, अंधापन आदि प्राप्त नहीं होते हैं ।

32 हृदय कमल में करें नवपदों का ध्यान

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 03-10-2019**

कमल की एक विशेषता है कि कमल कीचड़ में पैदा होता है, पानी से बढ़ता है, फिर भी उन दोनों से अलिप्त रहकर अपनी सुंदरता को बरकरार रखता है । कमल की भाँति अपने हृदय को संसार से अलिप्त रखकर हृदय रूपी कमल में अरिहंत आदि नवपदों का ध्यान करना चाहिए ।

इस जगत् में जो कुछ भी शुभ और सुखरूप है, वह सब अरिहंत परमात्मा को ही आभारी है । अज्ञान के अंधकार में रहे इस जगत् को ज्ञान की दिशा में ले जाने के लिए अरिहंत परमात्मा आत्मसाधना के बल पर सभी कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करने के बाद प्रतिदिन दो प्रहर तक धर्मदेशना देते हैं ।

जगत् में सुख का आधार पुण्य है, पुण्य का आधार धर्म है और धर्म का आधार अरिहंत परमात्मा हैं ।

अपने पूर्व भव में 20 स्थानक की आराधना के साथ सभी जीवों को शाश्वत सुखी करने की शुभभावना अरिहंत बनने का बीज है । इस शुभभावना के साथ जब विशिष्ट आराधना जुड़ती है, तब अरिहंतों की आत्मा तीर्थंकरनामकर्म का बंध करती है ।

अन्य पुण्यकर्म जीवात्मा के लिए स्व-पर हितकारक बनें, ऐसा कोई नियम नहीं है, जबकि तीर्थंकर नामकर्म के उदय से तो स्व-पर का अवश्य हित होता है । ऐसे तीर्थंकर नाम कर्म के पुण्य के उदय से अरिहंतों के जीवन में 34 अतिशय होते हैं । अपनी धर्मदेशना के द्वारा वे विशेष करके मनुष्यों को लक्ष्य में रखकर धर्मदेशना देते हैं ।

बाजार की कोई भी वस्तु मुफ्त में नहीं मिलती है । हर वस्तु का कुछ-न-कुछ दाम चुकाना पड़ता है । तो फिर अनंत जीव जिस जन्म की

इच्छा करते हैं ऐसे मनुष्यजन्म की प्राप्ति हमें मुफ्त में नहीं हुई है । पूर्व जन्मों के अपार पुण्य से हमें मनुष्यजन्म, आर्यदेश और आर्यकुल में हमारा जन्म हुआ है । उसी के साथ धर्म करने हेतु योग्य सामग्री की प्राप्ति भी अत्यंत ही विशिष्ट पुण्योदय से हुई है । इतना सब कुछ प्राप्त होने पर भी पाँच इन्द्रियों के विषयभोग एवं प्रमाद के वश में धर्म का आचरण नहीं करके हम सब कुछ खो देते हैं ।

विज्ञान के साधनों ने जीवन जीने के अन्य कार्यों को आसान बना दिया, परंतु साथ ही T.V. मोबाइल आदि शैतानी साधनों के माध्यम से हमारा समय भक्षण करना आरंभ किया है । इन साधनों से मानव अवश्य ही धर्म आराधना से दूर होकर राजकथा, भोजनकथा, देशकथा और स्त्रीकथा में समय को नष्ट कर देता है ।

मानवजन्म को पाकर व्यक्ति अपना जीवन सत्ता-संपत्ति-शक्ति-धन-वैभव आदि को पाने में पूरा जीवन व्यर्थ गवाँ देता है । परंतु जैसे ही आयुष्य पूरा होता है, वैसे ही इन सब से संबंध टूट जाता है ।

अपने मनुष्य जीवन को सार्थक करने के लिए वीतराग परमात्मा ने अरिहंतादि नवपदों की आराधना बताई है । अरिहंतादि की आराधना, साधना और उपासना से जीवात्मा स्वयं अरिहंतादि पदों को प्राप्त कर शाश्वत सुख को प्राप्त करती है । अतः प्रमादादि दोषों का त्याग कर के नवपदों की आराधना करनी चाहिए ।

अभिमान, क्षमा में बाधक

अभिमानी व्यक्ति किसी के पास क्षमा मांग नहीं सकता, क्योंकि क्षमा-मांगने में उसे अपनी लघुता का अहसास होता है । अभिमानी व्यक्ति किसी को माफ नहीं कर सकता है, क्योंकि उसके दिल में ईर्ष्या व तिरस्कार की भावना रही हुई होती हैं, इस भावना के फल स्वरुप वह दूसरों को हानि पहुँचाने में ही तैयार रहता है ।

33 दुर्गति से रक्षण करे वह धर्म

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 04-10-2019**

आत्मा को दुर्गति में गिरने से बचाए, वह धर्म है । धर्म के आचरण से ही जीवात्मा को दुर्गति के परिभ्रमण से मुक्ति और सद्गति की प्राप्ति एवं परंपरा से मुक्ति की प्राप्ति होती है ।

धर्म रूपी कल्पवृक्ष पंच परमेष्ठी से व्याप्त है, जो आत्मा को परमात्मा बनाते हैं । अरिहंत परमात्मा जड़ के स्थान पर है, अतः उनके ध्यान के लिए श्वेत वर्ण सर्व श्रेष्ठ आलंबन है ।

सिद्ध भगवंत फल के स्थान पर हैं, अधिकतर फल का रंग लाल होने से सिद्ध भगवंतों का ध्यान करने हेतु रक्त वर्ण सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

आचार्य भगवंत फूल के स्थान पर हैं, जिनका ध्यान करने के लिए पीला वर्ण सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

उपाध्याय भगवंत पत्तों के स्थान पर हैं, जिनका ध्यान करने के लिए हरा वर्ण सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

एवं साधु भगवंत स्कंध-थड़ के स्थान पर है जिनका ध्यान करने के लिए काला वर्ण सर्वश्रेष्ठ आलंबन है ।

नवपद ओली के दूसरे दिन सिद्ध पद की आराधना बताई है । सिद्ध भगवंत आठों प्रकार के कर्मों से मुक्त होने के कारण शाश्वत और निराबाध सुख के भोक्ता हैं ।

संसार में जो भी सुख है, वह सब कर्मजन्य है । साता वेदनीय के उदय से सुख और असाता वेदनीय से दुःख मिलता है । मोक्ष में गई आत्मा भौतिक सुख-दुःख से मुक्त होकर आत्मिक सुख में मग्न है ।

मोक्ष को प्राप्त सिद्ध आत्माएँ जन्म, जरा, मरण, रोग, शोक, अज्ञानता, पराधीनता आदि सभी दुःखों से सर्वथा मुक्त हैं । प्रत्येक

आत्मा के भीतर आत्मा का शुद्ध स्वरूप छुपा हुआ है, परंतु ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारण ढका हुआ है । यदि जीवात्मा दर्शन, ज्ञान और चारित्र की आराधना के द्वारा कर्मों के बंधनों को तोड़कर कर्मों से मुक्त हो जाए तो उसका मोक्ष हो सकता है ।

किसान अपने स्वयं के उपभोग में सामान्य अनाज का उपयोग करता है, परंतु जिस अनाज की फसल करनी हो, उसका बीज सबसे अच्छा पसंद करता है । वैसे ही संसार के सभी कार्य किसी भी उद्देश्य से करें परंतु धर्म की आराधना मोक्ष के लिए होनी चाहिए ।

हम अपने मन में जिसका ध्यान करते हैं, हम वैसे ही बन जाते हैं । अपना मन सीढ़ी के समान है, जो हमें ऊपर भी चढ़ा सकता है और नीचे भी उतार सकता है । अतः ऊँचे लक्ष्य के साथ ऊँची साधना एवं ध्यान से हमारी आत्मा का विकास शीघ्रतर हो सकता है ।

हमारा मन अत्यंत ही चंचल है । कभी किसी पदार्थ पर राग करता है तो कभी द्वेष करता है । इस मन की चंचलता और मलिनता का अंत करने के लिए जो गुणवान हैं अथवा जो गुणों को पाने के लिए सदैव तत्पर हैं ऐसे अरिहंत आदि पंच परमेष्ठी के स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करके उनके ध्यान में तल्लीन बनना चाहिए ।

देह और आत्मा

कवर में 10 लाख का चेक हो तो उस कवर की भी कींमत बढ जाती है, बस, इसी प्रकार देह में आत्मा हो तो देह की भी कींमत बढ जाती है । चेक निकाल देने के बाद कवर फेंक दिया जाता है, अथवा मूल्यहीन हो जाता है । उसी प्रकार, आत्मा निकल जाने के बाद देह को भी जलाकर भस्मीभूत कर दिया जाता है । मूल्यवान् आत्मा है, देह नहीं ।

34 गुरु-आज्ञा पालन से मोक्षप्राप्ति है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 05-10-2019**

गुरु तत्त्व की महिमा, गुरु का यथार्थ स्वरुप और गुरु की भक्ति के उपायों को बताने के लिए महोपाध्याय श्रीमद् यशोविजयजी म. ने **'गुरुतत्त्व विनिश्चय'** नाम के अद्भुत ग्रंथ का सर्जन किया है, उस ग्रंथ की मूल गाथाएँ प्राकृत भाषा में हैं और उन गाथाओं पर पूज्य उपाध्यायजी म. ने स्वयं संस्कृत भाषा में टीका की रचना की है। गुरु तत्व की महिमा बताते हुए वे लिखते हैं, **गुरु-आज्ञा-पालन का उत्कृष्ट फल मोक्ष प्राप्ति है।**

गुरु की कृपा से आठ प्रकार की अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियां प्राप्त होती है। तीर्थंकर परमात्मा के विरह में दीर्घ काल तक परमात्मा के बताए हुए मोक्षमार्ग को गुरु भगवन्त ही बताते हैं।

एक अपेक्षा से कह सकते हैं कि साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा के आलंबन से जितनी आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं, उससे भी अधिक आत्माएँ परमात्मा के द्वारा स्थापित तीर्थ के आलंबन से जाती हैं।

लम्बे समय तक प्रभु के तीर्थ को चलाने वाले आचार्य भगवन्त ही हैं। भूतकाल में हुए तीर्थंकर परमात्माओं के पवित्र चरित्रों को पढेंगे तो पता चलेगा कि उनकी आत्माओं को भी सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में निमित गुरु भगवन्त ही हुए हैं। तीर्थंकर पार्श्वनाथ भगवान को गुरु भगवन्त के उपदेश से ही सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई थी।

जिस प्रकार दीपक बाहर के अंधकार को दूर करता है, उसी प्रकार अनादि काल से आत्मा में रहे हुए अज्ञान अंधकार को दूर करने का काम गुरु भगवन्त ही करते हैं।

भूतकाल में हुए प्रदेशी राजा आदि नास्तिकों को भी सद्गुरु का आलंबन मिला तो वे भी इस भवसागर से पार उतर गए।

गृहवास का त्याग कर कठोरतम तपश्चर्या करने वाले 1500 तापसों को गौतम स्वामी जैसे सद्गुरु की प्राप्ति हुई तो उनको भी केवलज्ञान और मोक्ष की प्राप्ति हो गई। इस संसार दुःखगर्भित और मोहगर्भित वैराग्य को पाने वाले तो बहुत हैं, परन्तु ज्ञानगर्भित सच्चे वैराग्य की प्राप्ति तो सद्गुरु के सान्निध्य से ही होती है।

35

आत्मा के शत्रुओं पर विजय दिलाती है साधु पद की आराधना

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 06-10-2019**

आँख होने पर भी जिस व्यक्ति के विवेक रूपी चक्षु पर आवरण आ जाता है, तब व्यक्ति क्रोध, काम और लोभ में अंधा हो जाता है । ये तीनों आत्मा के परम शत्रु हैं ।

क्रोध में अंध बना व्यक्ति परिणाम का विचार नहीं कर पाता है । तथा सामने कौन व्यक्ति है वह भी नहीं देख पाता है । क्रोधांध व्यक्ति का नशा शराब के नशे से भी ज्यादा खतरनाक होता है । क्रोध की क्षणें तो अल्प होती हैं, परंतु उसका परिणाम चिर स्थायी होता है ।

क्रोध के बाद आत्मा का दूसरा खतरनाक शत्रु हैं 'काम' । पाँच इन्द्रियों के विषयसुखों को पाने के लिए व्यक्ति हर शक्य प्रयत्न करता है । मन में उठी कामवासना के अधीन बन जाता है, तब हत्या और आत्महत्या के साथ सगे भाई की हत्या भी करने के लिए तैयार हो जाता है ।

लोभ के वश व्यक्ति भी अंधा बन जाता है । धन, वैभव, सत्ता, शक्ति, संपत्ति, मान-सन्मान आदि पाने के लिए व्यक्ति अन्य की तकलीफों को नहीं देखते हुए मात्र अपने सुख की चाह में अंधा हो जाता है ।

भूतकाल में हुए अनेक क्रोधांध, कामांध और लोभांध व्यक्तियों के पतन के दृष्टांत मिलते हैं । आत्मा के इन शत्रुओं को परास्त करने के लिए अथक प्रयत्न की आवश्यकता है । नवपदों में बीच में रहे साधु पद की आराधना-उपासना से इन शत्रुओं पर विजय पा सकते है ।

साधु पद का ध्यान श्याम वर्ण से करना चाहिए । वास्तव में साधु का कोई काला वर्ण नहीं है, परंतु श्याम वर्ण उनके वैराग्य का

प्रतीक है । जैसे सफेद वर्ण पर कोई भी रंग चढ़ सकता है, परंतु काले वर्ण पर कोई दूसरा वर्ण नहीं चढ़ता है । वैसे ही साधुओं के वैराग्य का रंग श्याम वर्ण के समान है । साधुओं के वैराग्य के रंग पर अन्य संसार का रंग नहीं चढ़ सकता है ।

सहनशीलता, साधना और सहायता के विशिष्ट गुणों के धारक साधु भगवंत अपनी आत्मसाधना के बल पर आत्मा के परम शत्रु आठ कर्मों पर विजय प्राप्त करते हैं ! कोई भी परिस्थिति में बाह्य कष्टों को सहन करके आत्मिक एवं मानसिक प्रसन्नता के परमोच्च स्थान पर रहते हैं, इसलिए देव, चक्रवर्ती और इन्द्रों के सुख भी उनसे अंश मात्र भी नहीं है ।

धर्मरूपी कल्पवृक्ष में साधु पद स्कंध के स्थान पर है, जो पंचपरमेष्ठी पदों को प्राप्त करने के लिए प्राथमिक द्वार है । 27 गुणों से युक्त साधु पद की आराधना से हम भी साधु पद प्राप्त कर सकें, ऐसा प्रयत्न करना चाहिए ।

मन

कोयल में कालापन, शक्कर में मीठापन
नीम में कडवापन तथा नमक में खारापन निश्चित हैं,
परंतु मन का कभी एक स्वभाव नहीं है ।
वह कभी काला भी बन सकता है तो कभी ऊजला भी ।
वह मीठा भी बन सकता है तो कभी कडवा भी ।
मन के इस अनिश्चित और विचित्र
स्वभाव के कारण ही उसको शिक्षित करना
आसान नहीं है ।

36 धर्मी आत्मा के केन्द्र में आत्मा होती है

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 07-10-2019**

खेत में एक छोटा-सा बीज बोने पर कुदरत किसान को एक बीज के बदले हजारों बीज लौटाती है, वैसे ही हृदय रूपी खेत में धर्म का बीज बोने पर धर्मसत्ता, जीवात्मा को सिद्धिपद का उपहार देती है।

धर्मबीज अर्थात् जिनेश्वर परमात्मा एवं उनके द्वारा बताए धर्म के प्रति हृदय में शुभ अनुमोदना का भाव। हृदय में जिनेश्वर परमात्मा के प्रति अहोभाव पैदा होता है और बढ़ता है, तो वपन हुआ धर्मबीज अवश्यमेव जीवात्मा को अल्प काल में आत्मा के शाश्वत साम्राज्य की प्राप्ति कराकर मोक्ष दिलाता है।

जब जीवन में धर्म आता है तब धर्म के प्रभाव से व्यक्ति का जीवन एवं विचारधारा बदल जाती है। धर्मी आत्मा के केन्द्र में **'आत्मा'** होती है। आत्मा की मुक्ति और आत्मा की प्रगति के लिए वह यथाशक्ति प्रयत्न करती है।

सद्धर्म के प्रति श्रद्धा से ही जीव का आत्मविकास प्रारंभ होता है।

भूतकाल तो बीत चुका है, उसका विचार किया जाय तो पता चलेगा कि आज तक अनंत पुद्गल परावर्त काल बीत चुके है...फिर भी आश्चर्य है कि अभी तक अपनी आत्मा का मोक्ष नहीं हुआ है।

अनंत काल से अपनी आत्मा इस संसार की चार गतियों में भटक रही है। कभी यह देव बननी है, तो कभी भिखारी। कभी सत्ताधीश बननी है, तो कभी दाने-दाने के लिए तरसती है। कभी बुद्धिमान बनकर मान-सन्मान पाती है, तो कभी पागल बनकर सर्वत्र घृणा-तिरस्कार-अपमान व अनादर सहन करती है।

नाना प्रकार की योनियों मे जन्म लेकर इस आत्मा ने इतनी यातनाएँ सहन की हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है। इसकी सजा का

एक ही कारण है कि वह सतत ऐसी ही प्रवृत्ति कर रही है, जिससे प्रचुर मात्रा में कर्मों का बंध हो । कर्म का बंध कर लेने पर आत्मा को उस कर्म की सजा भुगतनी ही पड़ती है ।

कर्म को किसी की शर्म नहीं है । वह राजा व चक्रवर्ती को भी फटकारते हुए नहीं घबराता है । जो उसी भव में मोक्ष में जानेवाली हो या तीर्थंकर की आत्मा हो, जो अपने अंतिम भव में एकदम निर्दोष हो, फिर भी उन आत्माओं ने अपने पूर्व भवों में कोई भूल की है, तो उस भूल की सजा उन्हें भुगतनी पड़ती हैं ।

वास्तव में आत्मा के इस संसार-परिभ्रमण का मुख्य कारण मिथ्यात्व अर्थात् बुद्धि का विपर्यास है । मिथ्यात्व के उदय के कारण आत्मा को इस संसार के बंधन में से मुक्त होने की इच्छा ही नहीं होती है । उसे तो इस भयंकर दुःखमय संसार में जो क्षणिक व तुच्छ सुख मिल जाता है, उसी में आनंद आता है ।

जिसे मोक्ष पाना है, उसे आत्मा के शत्रु समान मिथ्यात्व का त्याग कर सम्यग्दर्शन पाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

सम्यग्दृष्टि आत्माएँ कर्म रूपी कीचड़ से जन्म लेती हैं और भोग से बढ़ती हैं, किंतु कमल की तरह कर्म और भोगों से अलिप्त रहती हैं ।

कर्म के उदय के कारण सम्यग्दृष्टि आत्मा कदाचित् संसार के सुखों का संपूर्ण त्याग न कर सके तो भी उसका अन्तर मन उन सुखों से अलिप्त रहता है ।

Remember : Violence is the path of misery.. Non violence is the path of eternal happiness..

37 आत्मा का गुण है ज्ञान

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 08-10-2019**

नवपद ओली का सातवाँ दिन ज्ञान की आराधना का दिन है । प्रत्येक व्यक्ति ज्ञानी बनना चाहता है, किसी को अज्ञानी रहना पसंद नहीं है । ज्ञान की प्राप्ति के लिए ही जन्म के बाद 2-3 वर्ष की उम्र में स्कूल में भेजकर ज्ञानार्जन कराया जाता है । बचपन से लेकर 15-20 वर्ष तक तो व्यक्ति अपनी पढ़ाई-लिखाई करके विद्वान बनता है ।

सांसारिक ज्ञान से व्यक्ति विद्वान जरुर बनता है, परंतु उसका लक्ष्य मात्र धनार्जन होने से वह ज्ञान भी वास्तव में तो अज्ञान ही है ।

वही ज्ञान सच्चाज्ञान है जो आत्मा को संयमित करके आत्मिक विकास की ओर प्रगति कराए ।

विज्ञान ने अनेक संशोधनों से वनस्पति में जीवत्व की सिद्धि जरूर की है, परंतु उनके संशोधन मात्र जानकारी के स्तर तक हैं, जीवों की रक्षा का कोई लक्ष्य नहीं है । जबकि धर्म हमें विभिन्न प्रकार के जीवों के जीवत्व का ज्ञान देकर उनके रक्षण के उपाय एवं हिंसा से होने वाले आत्मिक नुकसान से बचने का उपाय बताता है, अतः मात्र भौतिक नहीं आत्मिक ज्ञान की आवश्यकता है ।

वैसे तो ज्ञान, आत्मा का ही गुण है । आत्मा के भीतर अनंत ज्ञान रहा हुआ है परंतु ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बंधनों में बँधी आत्मा चार गतियों में अज्ञानी रही है ।

ज्ञान, ज्ञानी और ज्ञान के साधनों की आशातना से आत्मा ज्ञानावरणीय कर्म का बंध करती है ।

सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा द्वारा बताए तत्त्वज्ञान पर अश्रद्धा, तर्क, कुतर्क करके उनके वचनों को मिथ्या सिद्ध करना यह ज्ञान की बड़ी आशातना है । साथ ही जिन्होंने तत्त्वज्ञान को जाना है, ऐसे ज्ञानी

गुरुदेव, शिक्षक आदि की हँसी-मजाक, अपमान, करने से ज्ञानी की आशातना होती है ।

वर्तमान में स्कूल-कॉलेजों में पढ़ाई के द्वारा ज्ञान नहीं बल्कि अज्ञान ही दिया जा रहा है । इसलिए पढ़ा-लिखा व्यक्ति अर्थार्जन में स्वार्थी बन जाता है । दुनिया का ज्ञान स्वार्थी बनाता है, जबकि धर्म का ज्ञान परमार्थी बनाता है ।

जैसे हमें सुख पसंद है, वैसे ही अन्य सभी जीवों को भी सुख पसंद है । अन्य के साथ सुख-प्रदान का भाव हमें ज्ञान से ही प्राप्त हो सकता है ।

ज्ञान ही जीवात्मा के सम्यग्दर्शन और चारित्र की प्राप्ति का कारण है । अज्ञानी को श्रद्धा भी नहीं हो सकती है और विशुद्ध आचरण भी नहीं हो सकता है ।

उन्माद

उत्तम जाति, श्रेष्ठ रुप,
तीक्ष्ण बुद्धि, विपूल धन सामग्री,
दिंगत व्यापी कीर्ति आदि मद के
स्थानों को प्राप्त कर,
जो व्यक्ति अभिमान के शिखर
पर पहुंच जाता है, वह केवल
अपने हृदय का उन्माद ही है ।
इस उन्माद के फल स्वरुप
आत्मा अपने संसार को
ही बढाती है ।

38 भवभ्रमण का अंत लाता है चारित्र धर्म

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 09-10-2019**

वैज्ञानिक साधनों में समय को बचाने के अनेक उपाय हैं । वर्षों पहले जब विज्ञान के विशेष साधन नहीं थे, तब गृहकार्य में ही पूरा दिन बीत जाता था । आज विज्ञान के साधनों से व्यक्ति के कार्य खूब आसान हो गए हैं । परंतु बचे हुए समय का भक्षण करनेवाले T.V., Mobile आदि ऐसे मनोरंजन के साधन भी विज्ञान ने ही दिये हैं ।

हर व्यक्ति के लिए दिन के 24 घंटे एक समान होने पर भी आज व्यक्ति यही मानता है कि हमारे पास समय नहीं है ।

एक दिन की विशुद्ध संयम की आराधना से जीवात्मा को मोक्ष अथवा वैमानिक देवलोक प्राप्त हो सकता है । चारित्र धर्म की आराधना । भवभ्रमण का अंत लाने में समर्थ है ।

चार गतियों में अनंत काल से परिभ्रमण कर रही आत्मा को दुर्गति स्वरूप तिर्यंच और नरक खूब सरल है । कठिन है सद्गति स्वरुप देव और मनुष्य गति । अज्ञान कष्ट एवं त्याग, तप के द्वारा देवगति की प्राप्ति हो सकती है, परंतु मनुष्य के रुप में जन्म प्राप्त होना खूब कठिन है ।

मनुष्य-जन्म की प्राप्ति के बाद भी आर्यकुल, आर्यदेश, सद्धर्म की सामग्री, पांच इन्द्रियों की परिपूर्णता के साथ सद्-धर्म का श्रवण, उस धर्म पर श्रद्धा और धर्म आचरण अत्यंत ही दुर्लभ है ।

स्वयं तीर्थंकर परमात्मा भी चारित्र धर्म की आराधना करके सभी कर्मों का क्षय करते हैं । देवलोक में रहे असंख्य सम्यग्दृष्टि देवता भी प्रतिदिन चारित्रधर्म पाने की इच्छा करते हैं । तीर्थंकर एवं सिद्ध पद की प्राप्ति के लिए चारित्र धर्म की ही आराधना उपायभूत है ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा का इस जगत् पर सबसे बड़ा उपकार

यही है कि वे जगत् को रत्नत्रयी का मार्ग बतलाते हैं । जिस रत्नत्रयी की आराधना करके आत्मा मोक्ष पद प्राप्त करती है ।

भूतकाल में जितने भी तीर्थंकर हुए हैं, उन सभी ने अपने केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद चतुर्विध श्रीसंघ की स्थापना की है । महावीर प्रभु को केवलज्ञान की प्राप्ति वैशाख सुदी 10 के दिन हुई थी, जबकि चतुर्विध संघ की स्थापना वैशाख सुदी-11 के दिन हुई थी । उसका मुख्य कारण यही था कि वैशाख सुद-10 के दिन समवसरण में एक भी आत्मा ऐसी नहीं थी जो सर्वविरतिधर्म स्वरूप चारित्र को स्वीकार कर सके । इससे स्पष्ट है कि वीतराग परमात्मा के शासन का प्रारंभ सर्वविरति धर्म के स्वीकार से ही होता है ।

जब तक सर्व विरतिधर आत्माएँ होती हैं, तब तक शासन चलता है । सर्वविरतिघर चारित्र के अभाव में चतुर्विध श्रीसंघ का भी अभाव हो जाता है ।

इससे स्पष्ट है कि प्रभु का शासन सर्वविरति चारित्र से चलता है, मात्र श्रावकों से प्रभु का शासन नहीं चलता है ।

आसक्ति से विनाश

भ्रमर कमल में बंद हो जाता है,
सुगंध की आसक्ति के कारण !
हिरण मौत का शिकार होता है,
संगीत की आसक्ति के कारण !
पतंगा दीप में जल जाता है, रुप की आसक्ति के कारण !
शब्द, रुप, रस, गंध और स्पर्श
ये आसक्ति पैदा करानेवाले हैं । इनके संपर्क में
सावधान रहे । आसक्ति मौत का ही नहीं,
अधः पतन का भी कारण है ।

39 शत्रुंजय के समान अन्य कोई तीर्थ नहीं

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 10-10-2019**

रेल में गार्ड का डिब्बा अंत में होने पर भी उसका खूब महत्त्व है। रेलगाड़ी का ड्राइवर भले ही सबसे आगे हो, परंतु गार्ड के इशारे पर ही रेलगाड़ी का संचालन करता है। वैसे ही नवपद में तप पद सब के अंत में है, परंतु प्रत्येक आराधना का सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है।

तप अग्नि समान है। लाखों क्विंटल लकड़ी के ढेर को अग्नि की एक चिनगारी जलाकर भस्म कर देती है, वैसे ही अनंत काल में संचित किए कर्म के मैल को धोने के लिए तप धर्म की आराधना सर्वश्रेष्ठ उपाय है। निकाचित कर्म को भी तप से नष्ट किया जा सकता है।

जैसे अग्नि के साथ धूएं का संबंध है, जहाँ भी धूआं दिखता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है वैसे ही तप और सिद्धि पद का घनिष्ट संबंध है। सिद्ध पद को प्राप्त सभी आत्माओं के पूर्व जीवन में बाह्य और अभ्यंतर तप का आचरण अवश्य होगा ही।

बाईसवें तीर्थंकर श्री नेमिनाथ परमात्मा के शासन काल में हुए युधिष्ठिर आदि पाँच पांडवों ने आसोज मास की पूर्णिमा के शुभ दिन 20 करोड़ मुनिवरों के साथ अनशन करके शत्रुंजय महातीर्थ की पावन भूमि पर मोक्षपद प्राप्त किया था।

हर क्षेत्र में अनेकविध तीर्थ रहे हुए हैं, परंतु शत्रुंजय महातीर्थ सबसे बड़ा तीर्थक्षेत्र है। इस तीर्थ के कण कण के आलंबन से भूतकाल में अनंतानंत आत्माएँ मोक्ष में गई हैं। महाविदेह क्षेत्र में विचरण करते हुए श्री सीमंधर स्वामीजी समवसरण में बैठकर शत्रुंजय की स्तवना करते हुए कहते हैं कि 15 प्रकार की कर्मभूमि में शत्रुंजय के समान अन्य कोई दूसरा सिद्धिप्रदायक क्षेत्र नहीं है।

इस महान् तीर्थ की विधि के पालनपूर्वक यात्रा करने से आत्मा

भवबन्धन से शीघ्र मुक्त बनती है । इस तीर्थ की यात्रा छ'री के पालनपूर्वक करनी चाहिए ।

1. पादचारी : गुरु भगवन्त के सान्निध्य में पैदल यात्रा करनी चाहिए ।

2. भूसंथारी : यात्रा दरम्यान गुरु भगवन्त की तरह रात्रि में भूमि पर संथारे पर सोना चाहिए ।

3. एकल आहारी : इस तीर्थ की यात्रा दरम्यान कम-से-कम एकाशने का तप करना चाहिए ।

4. सचित्तपरिहारी : यात्रा दरम्यान सचित्त (जीववाली वस्तु) का त्याग करना चाहिए । सचित्त जल-फल आदि नहीं खाने चाहिए ।

5. आवश्यककारी : यात्रा दरम्यान उभय काल प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए ।

6. ब्रह्मचारी : यात्रा दरम्यान मन-वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए ।

धर्म आराधना

माया-कपट से इकट्ठा किया हुआ धन इसी जीवन तक काम लगेगा । जीवन में जोडे हुए संबंध मृत्यु तक साथ देंगें, जबकि जीवन में किया गया धर्म तो परलोक में भी साथ में चलेगा । दुर्गति के गर्त से बचाकर सद्गति में स्थापित करने का काम करेगा । अतः धन व संबंधों को बढाने के बजाय सच्चे धर्म की आराधना के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

40 आत्महित के लिए आवश्यक है आराधना

राजस्थानी संघ भवन-कोयंबत्तुर **दि. 11-10-2019**

जैन शासन में प्रत्येक साधु-साध्वी-श्रावक और श्राविका के लिए छह आवश्यक का पालन प्रतिदिन करना अनिवार्य है । छह आवश्यक यानी सामायिक, चतुर्विंशति स्तव, गुरुवंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और पच्चक्खाण । इन छह आवश्यकों की आराधना से आत्मा पूर्व में बंध हुए कर्म के बंधनों से मुक्त होती है और शुभ भाव की आराधना से विशिष्ट पुण्य का भी बंध होता है ।

साधु जीवन में प्रतिपल सर्व विरति की आराधना स्वरूप सामायिक की आराधना, दीक्षा के दिन से ही निरंतर चलती है, जबकि श्रावक-श्राविका के जीवन में पूरे दिन साधु की तरह सामायिक की आराधना शक्य नहीं है । फिर भी श्रावक को दिन भर में साधुजीवन का आस्वाद लेने के लिए बार-बार सामायिक की आराधना करनी चाहिए ।

चतुर्विंशति स्तव अर्थात् परमात्मा की द्रव्य और भाव से पूजा आराधना । साधु जीवन में परिग्रह का त्याग होने से द्रव्य पूजा का निषेध है । साधु जीवन में मात्र भावपूजा स्वरूप परमात्म भक्ति की आराधना कर सकते हैं ।

श्रावक के जीवन में धन का सर्वथा त्याग न होने से एवं मन के भीतर रही धन की आसक्ति को तोड़ने के लिए परमात्मा की विशिष्ट द्रव्यों से पूजा-भक्ति करनी चाहिए एवं चैत्यवंदन आदि के भाव-पूजा से परमात्म-भक्ति भी करनी चाहिए ।

परमात्म-भक्ति के साथ गुरु भगवंत की भी भक्ति करनी है । जैसे रथ के दो पहिये होने पर ही रथ व्यवस्थित रूप से चल सकता है वैसे ही मोक्षमार्ग में आगे बढ़ने के लिए परमात्मा और गुरु का नाम, स्थापना, द्रव्य और भावनिक्षेप के माध्यम से उनका आलंबन लेना जरूरी है ।

चौथा आवश्यक प्रतिक्रमण है । स्वीकार किये व्रतनियमों में कोई अतिक्रमण हो जाए, तब अपने अतिचारों की शुद्धि के लिए प्रतिक्रमण अवश्य करना चाहिए । प्रतिदिन दिनभर के पापों का क्षय करने के लिए शाम को दैवसीय प्रतिक्रमण, रात भर के पापों का क्षय करने प्रातःकाल में राई प्रतिक्रमण, 15 दिन के पापों का क्षय करने के लिए पक्खी प्रतिक्रमण, चार मास के पापों का क्षय करने के लिए चौमासी प्रतिक्रमण एवं वर्ष भर के पापों को क्षय करने के लिए संवत्सरी प्रतिक्रमण होता है ।

पाँचवाँ आवश्यक कायोत्सर्ग है । कायोत्सर्ग में अपनी काया को मर्यादित काल के लिए स्थिर करके काया की ममता का त्याग करना है । पूर्व के जन्मों में नरक, पशु और मनुष्य गतियों में हमारी आत्मा ने इच्छा के बिना खूब-खूब कष्टों को सहन किया है । अनिच्छा से अपार कष्ट सहन करने पर भी कर्म की निर्जरा अतिअल्प होती है, जबकि इच्छा और प्रसन्नता पूर्वक कष्टों को सहन करने से बड़े प्रमाण में कर्मों का क्षय होता है ।

आहार ग्रहण करना, यह आत्मा का मूलभूत स्वभाव नहीं है, परन्तु संसारी आत्मा को आहार के बिना चलता नहीं है ।

आहार के संस्कार आत्मा में इतने गाढ़ हो गए हैं कि उसके बिना आत्मा को चलता ही नहीं है ।

छठा प्रत्याख्यान आवश्यक आहार की आसक्ति को तोड़ने के लिए है । अनादि काल से आहार ग्रहण करने की क्रिया चालू है, परन्तु उस क्रिया के साथ अनुकूल आहार मिले तो मन में राग भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता है और प्रतिफूल आहार मिले तो मन में द्वेष-भाव पैदा हुए बिना नहीं रहता है ।

उन राग-द्वेष की वृत्तियों को तोड़ने का काम **'प्रत्याख्यान'** करना है । आहार की आसक्तियों को तोड़ने के लिए सुबह शाम प्रत्याख्यान पच्चक्खाण करने का विधान है । योग्य आहार सम्बन्धी प्रत्याख्यान के अनेक विकल्प बताए गए हैं ।

41 चार प्रकार के धर्म से चार संज्ञाओं का नाश

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 12-10-2019**

अनादिकाल से आत्मा में चार संज्ञाएँ रही हुई हैं–1) आहार संज्ञा 2) भय संज्ञा 3) मैथुन संज्ञा और 4) परिग्रह संज्ञा ।

इन चार संज्ञाओं-आसक्तियों को तोड़ने के लिए जिनेश्वर भगवन्त ने चार प्रकार के धर्म बतलाए हैं । 1) दानधर्म 2) शील धर्म 3) तप धर्म और 4) भाव धर्म ।

आहार की आसक्ति को तोड़ने के लिए तप धर्म है ।

भय-संज्ञा से मुक्त बनने के लिए भाव धर्म है ।

मैथुन की आसक्ति खत्म करने के लिए शील धर्म है और

परिग्रह की संज्ञा को तोड़ने के लिए दान धर्म बतलाया है ।

इससे स्पष्ट है कि दान धर्म का मुख्य उद्देश्य आत्मा में अनादिकाल से घर कर गई परिग्रह की आसक्ति को तोड़ना है । उस आसक्ति को तोड़ने के लिए ही दान धर्म है । यदि दान के साथ धन की आसक्ति को तोड़ने का उद्देश्य नहीं है तो वह दान, वास्तविक दान नहीं है ।

यश, कीर्ति व नाम की लालसा से किया गया दान वास्तविक दान नहीं है । कीर्ति आदि की लालसाओं से दिए गए दान से यश और कीर्ति भले प्राप्त हो जाय, परन्तु उस दान से भव-मुक्ति तो कदापि नहीं हो सकती है ।

दान का सामान्य अर्थ देना है, परन्तु जब वह विधि के पालन पूर्वक धन की आसक्ति को तोड़ने के उद्देश्य से सुपात्र में दिया जाता है तो वह दान, मोक्ष का साधन बन जाता है ।

धर्म का प्रारम्भ दान से होता है । कहा भी है **'धर्मस्य आदि-पदं दानं'** धर्म की प्रथम सीढ़ी दान है ।

दान में दूर रही वस्तु का त्याग करने का है । कोई भी व्यक्ति अपना धन चौबीस घंटे अपने साथ में नहीं रखता है ।

धन तिजोरी आदि में पड़ा होता है, अतः उसकी आसक्ति को तोड़ना तो भी सरल है । दान से शील धर्म का पालन कठिन है, क्योंकि शील में इन्द्रियों के सुखों की आसक्ति को तोड़ना है । दान द्वारा धन को छोड़ना सरल है, किन्तु इन्द्रियों के सुखों को छोड़ना कठिन है ।

शील से भी तप धर्म कठिन है, क्योंकि तप में शरीर के सुखों का त्याग रहा हुआ है । तप का सीधा प्रभाव शरीर पर पड़ता है । तप से भी भाव धर्म कठिन है क्योंकि भाव का सीधा संबंध मन के साथ है । मन की आसक्तियों को तोड़ना भाव धर्म है, जो और भी कठिन है ।

गृहस्थ के लिए द्रव्य-दान की प्रधानता है, क्योंकि वह धन के साथ रहा है । साधुओं के लिए द्रव्य दान का निषेध है क्योंकि दीक्षा के साथ ही उन्होंने धन का सर्वथा त्याग किया है ।

जो व्यक्ति अपने पास में विद्यमान बाह्य और अनित्य धन का सात क्षेत्रों में वपन नहीं करता है, वह बिचारा कठिन चारित्र का पालन कैसे कर पाएगा ? जो धन की आसक्ति नहीं छोड़ सकता, वह शरीर की आसक्ति कैसे छोड़ पाएगा ?

सामान्यतया मनुष्य के 10 प्राण कहे गए हैं, परन्तु कृपण व्यक्ति के लिए धन 11 वाँ प्राण होता है । कृपण व्यक्ति को धन प्राणों से भी अधिक प्यारा होता है । वह धन को बचाने के लिए अपने प्राणों की भी परवाह नहीं करता है ।

कृपण व्यक्ति जीवन पर्यंत धन के संरक्षण में डूबा रहता है । कृपण व्यक्ति को कितना ही धन मिल जाय, वह धन उसे कम ही लगता है । वह धन को बढ़ाने के लिए हिंसा, झूठ, चोरी, अन्याय, अनीति व बेईमानी आदि सभी पाप करने के लिए तैयार हो जाता है । इस प्रकार पापाचरण कर इतना धन इकट्ठा करने पर भी वह धन उसे मौत से बचा नहीं सकता है ।

42 दुश्मनावट की समाप्ति का आनंद दीर्घजीवी है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 14-10-2019**

नीम के पत्तों को ज्यों-ज्यों उबाला जाएगा, त्यों-त्यों उस पानी में कड़वाहट बढ़ती जाएगी, बस उसी प्रकार किसी व्यक्ति के प्रति मन में ज्यों-ज्यों क्रोध बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों वह क्रोध वैर की गाँठ बनता जाएगा । क्रोध की आग को शांत करना तो भी आसान है परन्तु वही क्रोध जब वैर की गाँठ में बदल जाता हैं, फिर उसे तोड़ना अत्यन्त ही कठिन हो जाता है ।

दुश्मन को समाप्त कर प्राप्त होने वाली शांति अल्पजीवी है, जब कि हृदय में से दुश्मनावट को समाप्त करने के बाद प्राप्त होने वाली शांति चिरंजीवी होती है । दुश्मन को समाप्त करने का आनंद क्षणिक है, जब कि हृदय में से दुश्मनी की समाप्ति का आनंद दीर्घजीवी है ।

सारी दुनिया **'दुश्मन'** को समाप्त करने की बात करती है, जबकि महावीर प्रभु अपने हृदय में रही दुश्मनावट को हटाने की बात करते हैं ।

क्रोध के आवेश में आकर छोटासा बालक अपनी माँ को भी लात मार देता है, परन्तु उसका क्रोध क्षणजीवी होता है । थोड़े ही समय बाद वह बालक माँ की गोद में सो जाता है । बालक का क्रोध क्षणजीवी है, अतः वैर में रूपांतरित नहीं होता है ।

क्रोध के प्रसंग में बालक जैसे बन जायें तो क्रोध को वैर में रुपान्तरित करने से अपने आपको बचा सकते हैं ।

'उम्र' के अनुसार तो सभी के जीवन में **'बाल्यकाल'** आता है, परन्तु बड़े हो जाने के बाद भी बालक जैसी **'सरलता'** रखना बहुत कठिन बात है । अपनी भूल का हर व्यक्ति बचाव करना चाहता है ।

अपने हाथ से काँच का गिलास फूट जाय तो कहेगा, **'यह तो**

काँच का गिलास था । आज नहीं तो कल फूटने ही वाला था । परन्तु वही ग्लास जब नौकर के हाथ से फूट जाता है तो अंधा है, दिखता नहीं है ।' न मालूम कितनी बातें सुना देता है । आज हर व्यक्ति को अपना **'घर'** बड़ा बनाने में रस है । मुम्बई जैसे शहर में रूम में रहने वाले को **'फ्लेट'** बनाने में रस है और फ्लेट में रहने वाले को **'बंगला'** बनाने में रस है ।

आवेश जब वैर में बदल जाता है, तब वही वैर आगे चलकर 'हिंसा' (हत्या) का कदम उठाए बिना नहीं रहता है । जिसके दिल में आवेश है, वह आगे चलकर किसी की भी हत्या कर सकता है ।

पानी का स्वभाव ढाल की दिशा की ओर बहने का है । बस, इसी प्रकार अनादिकाल के अभ्यास के कारण इस जीव को क्रोध, वैर, ईर्ष्या आदि तुच्छ तत्त्वों में अधिक रस है, जबकि क्षमा, प्रेम, उदारता आदि महान् तत्त्वों में अल्परुचि है । इसका मुख्य कारण यही है कि भूतकाल में अपनी आत्मा ने क्रोध, वैर, ईर्ष्या आदि हल्के तत्वों का खूब-खूब अभ्यास किया है ।

उन तुच्छ तत्त्वों के तीव्र अभ्यास के कारण वे तुच्छ प्रवृत्तियाँ सहज हो जाती हैं, जबकि क्षमा, प्रेम, उदारता, गम्भीरता आदि तत्त्वों का अभ्यास नहींवत् है, इस कारण उन तत्त्वों का सेवन कठिन लगता है और अवसर आने पर उन तत्त्वों को छोड़ने के लिए भी मन शीघ्र तैयार हो जाता है ।

अहंकार

अहंकारी को पर्वत की उपमा दी गई है ।
पर्वत कभी झुकने के लिए तैयार नहीं होता है ।
बस, अहंकारी व्यक्ति भी कभी झुकेगा नहीं ।
वह अपनी भूलों पर पर्दा डालने का ही काम करेगा ।
अहंकारी को भूल बताने में भी खतरा ही हैं, क्योंकि वह अपनी भूल कदापि स्वीकार नहीं करेगा ।

43

आसक्ति तोड़ने के लिए उपवास आदि तप हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 15-10-2019**

आहार की आसक्ति तोड़ने के लिए जैनधर्म में तपधर्म का विधान है । देह को टिकाने के लिए आहार की आवश्यकता रहती है, किन्तु वह आहार, देह-साधन के बजाय स्वाद का कारण बन जाय तो वह आहार देह के लिए विष बन सकता है ।

जन्म-जन्मान्तर से हर आत्मा में आहार आदि की आसक्ति है, उस आसक्ति को तोड़ने के लिए जैनदर्शन में उपवास आदि तप बतलाये गये हैं ।

उप अर्थात् समीप में और वास अर्थात् रहना । उपवास में आत्मा के समीप रहना होता है । उपवास में यदि आहार की आसक्ति न टूटे तो वह उपवास, उपवास न रहकर लंघन बन जाता है ।

उपवास केवल आहार-त्याग की कोई स्थूल प्रक्रिया नहीं है, किन्तु उसमें आसक्ति-त्याग/इन्द्रियजय की सूक्ष्म प्रक्रिया होती है ।

उपवास में आहार का त्याग, यह उपवास का स्थूल अर्थ है । वास्तव में उपवास के द्वारा अपनी चेतना को आत्मा की ओर केन्द्रित किया जाता है, भोजन के समय अपना ध्यान देह पर केन्द्रित होता है, जबकि उपवास में दैहिक-प्रवृत्ति का त्याग होने से अपनी चेतना, आत्मा पर आसानी से केन्द्रित हो सकती है ।

उपवास आत्मानुशासन की श्रेष्ठ प्रक्रिया है । उपवास के द्वारा चित्त शान्त, निराकुल, निष्काम व निर्लिप्त बनना चाहिए । वास्तव में, उपवास राग की आग को जीतने का भरसक प्रयत्न है । उपवास से आत्म-वैभव बढ़ता है और आत्मा विशुद्ध बनती जाती है । उपवास द्वारा इन्द्रियों की चंचलता पर अंकुश पाने का प्रयत्न किया जाता है ।

उपवास के द्वारा कर्मों की निर्जरा होती है । जिसने आसक्ति को तोड़ डाला है, ऐसे योगी पुरुष आहार करते हुए भी उपवासी कहलाते है ।

उपवास देह के विजातीय तत्त्वों को समाप्त करता है और शरीर में पैदा हुए सब अवांछनीय कूड़ा करकट को जला देता है । उपवास से पाचन-प्रणाली, आमाशय एवं रक्षक अवयवों को शारीरिक क्रिया की दृष्टि (Physiological) से विश्राम मिलता है । उपवास के बाद खाद्य का पाचन एवं पोषण का योग अधिक तेज हो जाता है ।

उपवास रोग-निवारण का श्रेष्ठ साधन है । रुग्णावस्था में पशु भी सबसे पहले खाना बन्द कर देते हैं । परन्तु रसना का गुलाम मानव रुग्णावस्था में भी स्वादिष्ट पदार्थों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो पाता है ।

उपवास से मानसिक क्षमता बढ़ती है । पोषणशास्त्र के विद्वान डॉ.रगनर बर्ग ने लिखा है । During fasting the body burns up and excreate huge amount of accumulated waste. उपवास में पाचन तंत्र बड़ी मात्रा में संचित व्यर्थ पदार्थ को जलाता एवं निष्कासित करता है ।

उपवास तो प्रकृति की माँग है । पशु-पक्षी के शरीर में थोड़ी सी गड़बड़ होती है और वे तुरन्त खाना बन्द कर देते हैं । मानव-शरीर में भी जब विजातीय तत्त्व बढ़ जाते हैं तब पाचन-तंत्र विश्राम चाहता है । उपवास से पाचन-तंत्र को विश्राम तो मिलता ही है, साथ में विजातीय तत्व भी नष्ट हो जाते हैं ।

Navakar is miraculous mantra and we must always recite it to gain health, wealth prosperity and peace of mind.

44 जीवन में अंकुश जरुरी है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 16-10-2019**

आग जीवन देती है और जीवन लेती भी है । नियंत्रण (control) में रही रसोड़े की आग जीवन देती है, जबकि अनियंत्रित (uncontrolled) आग माल और जान का भारी नुकसान करती है । पानी अपने जीवन का आधार है और मर्यादा बाहर नदी में बाढ़ के रुप में पानी आ जाय तो जीवन लेता भी है ।

मोरबी में मच्छू डेम टूटने पर आई बाढ़ से हजारों लोगों की मृत्यु हो गई थी और हजारों लोग बेघर बार हो गए थे ।

मर्यादा में रही हवा **'प्राण वायु'** का काम करती है, वह हमें जीवन देती है और वही हवा जब आँधी और तूफान के रूप में बहने लगती है तो भयंकर विनाश का कारण बन जाती है । बस, इसी प्रकार युवा अवस्था में शक्तियों का उत्थान होता है । बौद्धिक शक्ति भी बढ़ जाती है...परन्तु उन शक्तियों पर **'विवेक'** का अंकुश न हो तो ये अंतरंग शत्रु आत्मा को तबाह कर देते है । ठीक ही कहा है–

कार में रफ्तार के साथ ब्रेक भी चाहिए,
घूमती सुई के साथ, स्थिर रेखा भी चाहिए ।
प्रगति के लिए केवल-दौड़ ही अपेक्षित नहीं,
जीवन में क्रिया के साथ विवेक भी चाहिए ।

100-150 K.M. प्रति घंटे की गति (Speed) से दौड़ने वाली कार (car) में यदि ब्रेक सही नहीं हो तो आप में से कोई भी व्यक्ति उस कार में बैठने की हिम्मत नहीं करेगा । कार में मात्र गति (Speed) ही पर्याप्त नहीं है, ब्रेक होना भी जरूरी है ।

इसी प्रकार युवावस्था में सिर्फ बुद्धि ही नहीं चाहिए, उस बुद्धि या शक्ति पर विवेक का अंकुश भी होना चाहिए ।

नागासाकी और हिरोशिमा पर बम डाले गए थे । लाखों लोग मारे गए । बम की शोध करनेवाले वैज्ञानिक के पास क्या कम बुद्धि थी ?

गैस चेंबर में बंदकर लाखों यहूदियों को मौत के घाट उतारने वाले हिटलर के पास क्या कम शक्ति थी ? बुद्धि और शक्ति पर विवेक का अंकुश न हो तो वह बुद्धि और शक्ति सिर्फ विनाश को ही आमंत्रण देती है ।

यदि आपके पास बुद्धि और शक्ति है तो पहले नम्बर पर अपने अंतरंग शत्रु `काम' पर संपूर्ण विजय प्राप्त करने के लिए पुरुषार्थ करना चाहिए । यदि यह शक्य न हो तो उन शत्रुओं से अपने आपको बचाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

कामवासना रूप अंतरंग शत्रु को अंकुश में रखने के लिए ब्रेक है सदाचार की साधना ! सदाचार अर्थात् काम पर नियंत्रण ! सदाचार के पालन के लिए ही चौथा अणुव्रत है । याद है न चौथे अणुव्रत का नाम ? याद करिये, इसे कहते हैं, **'स्वदारा-संतोष और परस्त्री-गमन का त्याग ।'**

आज विश्व में एडस् की बीमारी दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है । एडस् का मूल कारण है...व्यभिचार का सेवन । इस बीमारी से बचने के लिए विदेशों में कई लोग वेश्यागमन और परस्त्री-गमन का त्याग कर रहे हैं ।

जगत्-माता

पुत्र के प्रति रही हुई ममता के कारण,
माँ का खून भी दूध में बदल जाता है ।
अरिहंत परमात्मा तो जगत् की माता हैं,
अतः उनके शरीर में रहा खून दूध की धारा के समान
सफेद ही होता है । खून के स्थान पर दूध की धारा को
देखकर चंडकौशिक का हृदय पिघल गया था ।
हे परमात्मा ! आप तो जगत् की माता हो ।

45 माया छोड़ो : सरल बनो !

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 17-10-2019**

माया अर्थात् छल-कपट । बाहर कुछ और अंदर कुछ, उसे मायावी कहते हैं । हाथी के दाँत चबाने के अलग होते हैं और दिखाने के अलग होते हैं । उसी प्रकार मायावी व्यक्ति का भी बाह्य आचरण अलग होता है और उसके भीतर कोई अलग भावना होती है ।

पाँव में काँटा लग जाय तो हम तुरन्त ही उसे बाहर निकालने की कोशिश करते हैं । काँटे को बाहर न निकाला जाय तो वह भविष्य में भयंकर तकलीफ दे सकता है ।

जीवन में कोई पाप हो जाने के बाद उस पाप को छिपाना यह आत्मा का शल्य है । आत्मा में रहे इस शल्य को बाहर निकालना बहुत जरूरी है । समय रहते उस शल्य को बाहर नहीं निकाला जाय तो भविष्य में आत्मा की स्थिति अत्यन्त ही भयंकर हो सकती है । अतः साधक आत्मा को शल्ययुक्त होकर एक क्षण भी नहीं रहना चाहिए ।

देह के शल्य से भी आत्मा का शल्य अत्यन्त खतरनाक है । देह का शल्य अल्प समय के लिए नुकसान करता है, जबकि आत्मा का यह शल्य अनेक भवों तक आत्मा को हैरान-परेशान करता है । लक्ष्मणा साध्वी आदि के प्रसंगों को जानने के बाद तो अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए एक क्षण भी प्रमाद नहीं करना चाहिए ।

रोग को छिपाने से रोग घटता नहीं है, बल्कि बढ़ता ही जाता है, इसी प्रकार शल्यपूर्वक धर्म-आराधना करने से आत्मा का रोग मिटता नहीं है, बल्कि यह रोग बढ़ता जाता है ।

पाप की आलोचना भी शल्यरहित करे तो ही लाभ होता है । जिन-जिन आत्माओं ने पाप को छिपाने की कोशिश की, उन-उन आत्माओं का संसार बढ़ा है और जिन्होंने शल्यरहित होकर अपने पापों का प्रायश्चित्त किया, वे आत्माएँ अल्पकाल में ही मोह माया के बंधन से

सर्वथा मुक्त बनी हैं । साधक आत्मा का यह कर्तव्य है कि वह भूलकर भी आत्मा में शल्य को स्थान न दे ।

जो आत्मा सरल है अर्थात् जिसमें माया-कपट की गाँठ नहीं है, उन्हीं आत्माओं की शुद्धि हो सकती है, उन्हीं आत्माओं का कल्याण हो सकता है । परन्तु जो आत्माएँ मायावी हैं, कपटी हैं, उन आत्माओं का कभी कल्याण नहीं हो सकता है । मायावी व्यक्ति का जीवन **'मुख में राम और बगल में छुरी'** जैसा होता है ।

हाथी के चबाने के दाँत अलग होते हैं और दिखाने के दाँत अलग होते हैं । मायावी व्यक्ति बाहर से अलग दिखावा करता है और उसके भीतर कुछ और ही होता है ।

धागे में गाँठ आने के साथ ही जैसे सिलाई मशीन खटखटाने लगती है, उसी प्रकार हृदय में माया आने के साथ ही विकास की गति अवरुद्ध हो जाती है ।

मन-मंदिर

जिस प्रकार नगर में
मंदिर होता हैं तो उसी प्रकार
नगर के बाहर कब्रिस्तान भी होता है,
जहां मुर्दो को गाडा जाता है
अपने मन में
प्रभु की प्रतिष्ठा करनी हो तो
मन को मंदिर बनाना पडेगा
और दूसरों के दोषों को गाडने के लिए
कब्रिस्तान भी बनाना पडेगा ।
मन मंदिर में प्रभु की प्रतिष्ठा से
गुणों की प्रतिष्ठा होती है ।

46

सद्गुरु का उपकार

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 18-10-2019**

गुरु का बहुमान यह मोक्ष का निश्चित कारण है अर्थात् जिसके हृदय में अपने गुरुदेव के प्रति पूर्ण बहुमान भाव है उसका अवश्य मोक्ष है ।

जीवन में अन्य गुणों को आत्मसात् करने से आत्मा का मोक्ष हो सकता है और नहीं भी हो सकता है, परन्तु अपने भवोदधितारक उपकारी सद्गुरु के प्रति जिसके हृदय में पूर्ण बहुमान भाव है, उस आत्मा का तो अवश्य मोक्ष होता है ।

जगत् के जीवों के उद्धार के लिए धर्मशासन की स्थापना करनेवाले श्री तीर्थंकर परमात्मा हैं, परन्तु उस शासन को दीर्घकाल तक चलानेवाले तो सद्गुरु ही हैं । शासन की स्थापना के बाद ऋषभदेव प्रभु का अस्तित्व 1000 वर्ष न्यून एक लाख पूर्व वर्ष तक रहा, जबकि उनका शासन 50 लाख करोड़ सागरोपम तक चला, इतने दीर्घकाल तक शासन चलाने वाले गुरु ही तो हैं ।

शासन की स्थापना के बाद भगवान महावीर का अस्तित्व 30 वर्ष तक रहा, जबकि उनके द्वारा स्थापित शासन 21000 वर्ष तक रहेगा, यह सब सद्गुरु को ही आभारी है । देव-गुरु और धर्म रूपी तत्वत्रयी के बीच में गुरु को रखा है । इसका अर्थ है कि देव और धर्म तत्त्व की पहिचान कराने वाले गुरु ही हैं ।

संसार में तीर्थंकरों का अस्तित्व मर्यादित समय के लिए होता है क्योंकि उनका आयुष्य परिमित होता है, जबकि उनके अभाव में दीर्घकाल तक जगत् के जीवों को धर्मबोध देनेवाले सद्गुरु होते हैं ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा अपने धर्मोपदेश द्वारा जीवों को प्रतिबोध करते हैं, परन्तु दीक्षाप्रदान के बाद उन शिष्यों के योगक्षेम के लिए उन्हें छद्मस्थ गुरुओं को ही सौंपते हैं, क्योंकि छद्मस्थ शिष्य की सारणा, वारणा, चोयणा और पडिचोयणा छद्मस्थ गुरु ही कर सकते हैं, अतः सद्गुरु का उपकार अपरम्पार है ।

सद्गुरु का शिष्य पर सबसे बडा उपकार यह है कि वे जिनेश्वर परमात्मा की सच्ची पहिचान कराते हैं । जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट धर्म का स्वरूप समझाते हैं । अपने उपदेश द्वारा संसार की असारता समझाते हैं । गुरु ही उपदेश द्वारा शिष्य के हृदय में वैराग्य भाव का बीजारोपण करते हैं । अपनी प्रेरणा द्वारा शिष्य के वैराग्य भाव को पुष्ट करते हैं । सद्गुरु ही मुमुक्षु को संयम जीवन का प्रशिक्षण देते हैं ।

सद्गुरु ही शिष्य को ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा प्रदान करते हैं । योग्य आत्मा को गुरु प्रव्रज्या प्रदान कर भवसागर से पार उतारते हैं । सद्गुरु ही शिष्य की शारीरिक और आध्यात्मिक चिंता करते हैं ।

गुरु ही शिष्य को शास्त्राभ्यास कराकर हर तरह से योग्य बनाते हैं । सुयोग्य शिष्य को गुरु ही आचार्य आदि पद प्रदान कर स्वतुल्य बनाते है । इस प्रकार अनेक रीतियों से सद्गुरु शिष्य पर उपकारों की वर्षा करते हैं । सद्गुरु ही शिष्य के अज्ञान और मोहरुपी अंधकार को दूर करते हैं ।

एक मात्र प्रभुशासन की परम्परा को जीवन्त रखने के लिए और संसार के कीचड़ में से बाहर निकाल कर मोक्षमार्ग में आगे बढ़ाने के लिए ही योग्य आत्मा को सद्गुरु दीक्षा प्रदान करते हैं ।

पुण्योदय

अपने क्रोध के कारण सामनेवाला व्यक्ति
दब जाए, तो याद रखना- 'यह क्रोध का फल नहीं है ।'
पूर्व के पुण्योदय के कारण वह व्यक्ति
अपने से दब जाता है । परंतु, आश्चर्य ! हम उसका यश
अपने क्रोध को ही दे देते हैं । परिणाम स्वरुप
हमारा क्रोध घटने के बजाय बढ़ता ही जाता है ।
क्रोध करने से अपना पुण्य भी समाप्त हो जाता है ।

47 दीपावली पर्व की महिमा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 22-10-2019**

भारत वैविध्यपूर्ण देश है । यहाँ अनेक धर्म हैं, अनेक जातियाँ है, अनेक भाषाएँ हैं, अनेक वेशभूषाएँ हैं, रूप-रंग में भिन्नताएँ हैं । जितनी विविधता इस देश में मिलेगी, उतनी अन्यत्र कहीं नहीं मिलेगी ।

यहाँ हर शहर में अनेक धर्मों के अपने-अपने स्थान हैं । अनेक प्रकार के धार्मिक त्यौहार यहाँ वर्ष भर चलते हैं । बारह महीनों में अनेक पर्व आते हैं । जैन दृष्टि से उन पर्वों को दो भागों में विभाजित किया गया है । 1) लौकिक पर्व और 2) लोकोत्तर पर्व ।

लौकिक पर्वों का एक मात्र उद्देश्य अच्छा खाना, अच्छे कपड़े पहिनना, घूमना-फिरना, मिलना-जुलना, आमोद-प्रमोद करना, बस, यही होता है । लोकोत्तर पर्व अर्थात् जो आत्मा को पावन करे, पवित्र करे । सोई हुई चेतना को जाग्रत करे ।

जहाँ आत्मा के गुण-दोषों का विचार हो, गुण प्राप्ति और दोष-ह्रास का जहाँ ध्येय हो, दोषों के नाश के लिए जहाँ पूरा-पूरा प्रयत्न हो, वे सब लोकोत्तर पर्व कहलाते हैं ।

जैन धर्म के सभी पर्व लोकोत्तर पर्व हैं, क्योंकि वे सभी पर्व आत्मा को जागृत करते हैं, उन पर्वों में मौज-मस्ती की नहीं, बल्कि त्याग, तप और संयम की साधना होती है ।

अपने हर पर्व का तप-जप के साथ संबंध जुड़ा हुआ है । ज्ञान पंचमी आती है, लोग उपवास करते हैं । नवपद ओली आती है, आराधक लोग आयंबिल करते हैं । पौष दशमी आती है, आराधक लोग अट्ठम करते हैं । दीपावली आती है और लोग छट्ठ करते हैं । भगवान महावीर प्रभु की जीवनयात्रा के साथ छट्ठ तप का घनिष्ट संबंध है । प्रभु ने दीक्षा ली तब प्रभु के छट्ठतप था । प्रभु को केवलज्ञान प्राप्त हुआ, तब भी प्रभु के छट्ठ तप था । छद्मस्थ अवस्था में प्रभु ने 229 छट्ठ किये थे ।

प्रभु मोक्ष में गए, तब भी प्रभु ने छट्ठ किया था । दीपावली एक ऐसा पर्व है, जिसे हम भी मनाते हैं और हिन्दू लोग भी मनाते हैं । अतः यह लोकोत्तर पर्व है और लौकिक पर्व भी है । जैन धर्म में दीपावली पर्व का संबन्ध प्रभु महावीर स्वामी के निर्वाण के साथ है । इस दिन हमें प्रभु के निर्वाण कल्याणक की आराधना करने की है ।

वीर प्रभु ने अपने निर्वाण के पूर्व भरत क्षेत्र के जीवों के हित के लिए निरन्तर 16 प्रहर तक देशना दी थी । पुण्य फल को बताने वाले 55 अध्ययन, पाप फल को बताने वाले 55 अध्ययन व अपृष्ट व्याकरण के 36 अध्ययन कहकर प्रभु ने मोक्ष प्राप्त किया था ।

अपने सद्भाग्य से वे 36 अध्ययन आज भी विद्यमान हैं । उन अध्ययनों का स्वाध्याय कर आज भी हम प्रभु महावीर की अमृत-वाणी का आस्वाद ले सकते हैं ।

वर्तमान काल में साधुजीवन में बड़ी दीक्षा के बाद उत्तराध्ययन-सूत्र के योगोद्वहन कराए जाते हैं । उत्तर अर्थात् श्रेष्ठ । विनय अध्ययन इस अध्ययन में धर्म के मूल विनय गुण का सुंदर वर्णन है । विनीत वह कहलाता है जो गुरु की आज्ञा के अनुसार प्रवृत्ति करता है, जो गुरु के दृष्टिपथ में रहता है और जो गुरु के इशारे मात्र को समझकर उसके अनुसार प्रवृत्ति करता है, वह सुविनीत शिष्य कहलाता है ।

मृत्यु दंड

इस धरती पर जिसका जन्म हुआ है,
उसे फाँसी की सजा तो हो ही चुकी है ।
हाँ ! उसे फाँसी न कहकर मृत्यु दंड कहते हैं ।
फर्क इतना ही है कि उसकी Date Declare नहीं है ।
हम निश्चिंत हैं क्योंकि मृत्यु की Date का हमें पता नहीं है । मृत्यु के आगमन का जब पता नहीं है,
तब तो हमें ज्यादा सावधान रहने की आवश्यकता है ।

48

संसार असार है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 23-10-2019**

यह समस्त संसार नानाविध दुःखों से भरा हुआ है । संसार में जन्म की पीड़ा है, जरा अवस्था की पीड़ा है । रोग-शोक की पीड़ा है और मरण की पीड़ा है । जब तक आत्मा कर्मबन्धन से सर्वथा मुक्त नहीं बनती है, तब तक आत्मा को इस संसार में जन्म धारण करना ही पड़ता है । जन्म के साथ मृत्यु जुड़ी हुई है । जिसका जन्म है, उसका मरण अनिवार्य है । परन्तु हर मरण के बाद जन्म जरूरी नहीं है । आत्म-साधना के बल से जो आत्माएँ कर्मबन्धन से मुक्त हो जाती हैं, उन आत्माओं की मृत्यु अन्तिम होती है...परन्तु उन्हें पुनः जन्म धारण करना नहीं पड़ता है ।

कर्मबन्धन से मुक्त बनी आत्माएँ मृत्यु पर विजय पा लेती हैं, वे सदा के लिए अजर-अमर बन जाती हैं । जीवन की शाश्वतता के साथ साथ वे अव्याबाध सुख के सागर में सदा काल लीन बन जाती हैं और केवलज्ञान रूपी चक्षु के द्वारा परिवर्तनशील जगत् के समस्त भावों को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष देखती हैं ।

दूसरी ओर अनन्त ज्ञान और अनन्त सुख की स्वामी होने पर भी स्व-स्वभाव की अज्ञानता, मोह के कारण यह आत्मा दुनिया के क्षणिक भोग-सुखों में आसक्त बनती है । जिसके परिणामस्वरूप नये-नये कर्मों का बन्ध करती है...और वे कर्म जब उदय में आते हैं, तब नाना प्रकार के भयंकर दुःख सहन करती है ।

शास्त्र-चक्षु से दृष्टिपात करें नरक के जीवों पर । 'ओहो ! कैसी भयंकर यातनाएँ ये सहन कर रहे हैं । परमाधामी देव इन नारक जीवों को सतत दुःख पहुँचा रहे हैं । तलवार जैसे तीक्ष्ण हथियारों से उन्हें चीर रहे हैं ।...भयंकर अग्नि में डाल रहे हैं...अत्यन्त दुर्गन्धमय वैतरणी नदी में डुबो रहे हैं ।

नरक में क्षेत्रकृत वेदना भी कोई कम नहीं है । ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी से भी अनन्तगुणी गर्मी नरक का जीव सहन करता है । भूख और प्यास से वे सतत संतप्त रहते हैं । अधिकांश जीव आर्त्त व रौद्र ध्यान में समय व्यतीत करते हैं । अपने विभंगज्ञान का उपयोग भी अपने पूर्व भव के शत्रुओं की पहिचान में ही करते हैं...और उन शत्रुओं को पहिचान कर विक्रिया करके एक-दूसरे को दुःख देते रहते हैं । मनुष्य लोक की अपेक्षा नरक में अनन्तगुणी वेदना है ।

कोई देव हमें उठाकर नरक के जीवों की पीड़ा के साक्षात् दर्शन करा दे...तो सम्भव है, उस दृश्य को देखते ही हम बेहोश हो जावें । आपको पता ही होगा कि नरक के जीवों को ये पीड़ाएँ कितने काल तक सहन करनी पड़ती हैं ?

आप जानते ही हो कि नरक के जीवों का जघन्य आयुष्य दस हजार वर्ष और अधिकतम आयुष्य तैंतीस सागरोपम का है । एक सागरोपम में असंख्य वर्ष बीत जाते हैं । उन असंख्य वर्षों में नरक के जीवों को क्षण भर भी सुख और शान्ति नहीं है ।

नरक की पीड़ा तो परोक्ष है, तिर्यंचों की पीड़ा तो साक्षात् दिखाई देती है न ! क्या बुरे हाल होते हैं, उन पशुओं के ! भयंकर दुष्काल में उन पशुओं को भूख-प्यास व गर्मी की भयकंर पीड़ा सहन करनी ही पड़ती है ।

दोष

रोग और दोष दोनों में समानता है ।
रोग को छिपाने से रोग बढ़ता है और डॉक्टर के
आगे रोग को प्रगट करने से रोग नष्ट होता है ।
अपनी आत्मा में रहे दोष को छिपाने से वह
दोष बढ़ता जाता है और सद्गुरु के आगे अपने दोषों
को प्रकट करने से अपने दोष समाप्त होते जाते हैं ।

49 प्रभु महावीर की अंतिम देशना

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 24-10-2019**

इस संसार में अनंतानंत आत्माएँ हैं, जबकि मनुष्य भव तो संख्यात आत्माओं को ही प्राप्त हुआ है । यह मानव-जन्म तो देवों की भी दुर्लभ है । देवता असंख्य हैं, जबकि मनुष्य तो संख्यात ही हैं । सभी देवताओं को भी मनुष्य-जन्म सुलभ नहीं है ।

भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और प्रथम द्वितीय देवलोक के अधिकांश देव भी मरकर एकेन्द्रिय में पृथ्वीकाय, अप्काय और वनस्पतिकाय में चले जाते हैं । हमारा कितना सद्भाग्य है कि देवताओं को भी दुर्लभ ऐसा मानव-जन्म हमें मिल पाया है । मानव-जन्म-प्राप्ति के बाद वीतरागकथित धर्म का श्रवण अत्यन्त दुर्लभ है ।

जिनवाणीश्रवण के बाद प्रभु के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है । श्रद्धा के बाद आचरण तो और भी दुर्लभ है । प्रभु कहते हैं–हे महात्मन् ! पुण्योदय से तुझे इन चारों वस्तुओं की प्राप्ति हुई है, अतः अब प्रमाद के वशीभूत होकर मानव- जीवन को व्यर्थ ही मत गँवा देना ।' इस प्रकार इस अध्ययन में मोक्ष के लिए प्रबल पुरुषार्थ करने की सुंदर प्रेरणा दी है ।

वीर प्रभु भव्यात्माओं को संबोधित करते हुए कहते हैं, **'मानव-जीवन में आयुष्य असंस्कार्य है, अतः बिल्कुल प्रमाद करने जैसा नहीं है ।'** टूटे हुए लकड़ी के पात्र को एरलड़ीट के द्वारा आसानी से जोड़ा जा सकता है । फटे हुए कपड़े को सिलाई मशीन द्वारा आसानी से सिया जा सकता है । टूटे हुए लोहे के टुकड़ों को वेल्डिंग द्वारा जोड़ा जा सकता है । मकान की दीवार में तिराड़ पड़ जाय तो सीमेंट द्वारा उसे भी जोड़ा जा सकता है ।

हार्ट में कहीं गड़बड़ हो तो बाय-पास सर्जरी द्वारा उसे ठीक किया जा सकता है । अन्य सभी टूटी हुई वस्तुओं को जोड़ना शक्य है,

परन्तु एक बार आयुष्य टूट जाय तो उसे जोड़ना किसी भी हालत में संभव नहीं है । विज्ञान ने आज तक अनेक रोगों के इलाज किए हैं, परन्तु मृत्यु के आगे वह भी लाचार है ।

बड़े-बड़े ऑपरेशन करने के पहले ही डॉक्टर आपके पास सिग्नेचर करा लेते हैं । यह Case Fail गया तो इसमें डॉक्टर की कोई जवाबदारी नहीं रहेगी । डॉक्टर भी कहते हैं, हम तो अपना प्रयास करते हैं, दर्दी का बचना या न बचना यह तो भगवान की मर्जी की बात है ।

आयुष्य की इस क्षणभंगुरता को जानकर प्रमाद का सर्वथा त्याग करना चाहिए और अप्रमत्त भाव से आत्म साधना कर लेनी चाहिए ।

जन्म के बाद मरण सुनिश्चित है, परन्तु मृत्यु समय समाधि-मरण हो तो वह जन्म-मरण का अंत ला सकता है, बाकी तो मृत्यु-समय की भयंकर वेदना में रही असमाधि, भावी जन्म-मरण को ही बढ़ाती है ।

भगवान महावीर प्रभु ने मरण के मुख्य दो प्रकार बतलाए हैं- 1) अकाम मरण और 2) सकाम मरण ।

अकाम मरण को बाल मरण भी कहते हैं । बाल मरण असमाधि भाव से युक्त होने के कारण संसार को बढ़ाता है, जबकि सकाम मरण, समाधि भाव से युक्त होता है, अतः आत्मा के भावी संसार का अंत लाता है । समाधिमरण पानेवाली आत्मा अल्प भवों में ही भवबंधन से मुक्त हो जाती है ।

The meeting with enlightened men kindles in the hearts of devotees the light of knowledge and makes it burn brightly.

50

प्रभु महावीर का निर्वाण कल्याणक दीपावली पर्व

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 25-10-2019**

चरम तीर्थपति महावीर प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र में साधु के चार विकल्प बतलाए हैं । कुछ आत्माएँ सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म स्वीकार करती हैं और सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

कुछ आत्माएँ सियार वृत्ति से चारित्र धर्म का स्वीकार करती हैं और सियारवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

कुछ आत्माएँ सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म को स्वीकार करती हैं और सियारवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती है ।

कुछ आत्माएँ सियारवृत्ति से चारित्र धर्म स्वीकार करती हैं और सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म का पालन करती हैं ।

सिंहवृत्ति से चारित्र धर्म का स्वीकार और पालन अर्थात् खूब उत्साह और उल्लासपूर्वक दीक्षा अंगीकार करना और उसी उत्साह-उल्लास के साथ चारित्रधर्म का पालन करना ।

संयम के बाह्य कष्टों को देख मन में लेश भी दुर्भाव पैदा होने नहीं देना । सियारवृत्ति अर्थात् उत्साहहीन होकर चारित्र धर्म का स्वीकार करना और निरुत्साही बनकर चारित्र धर्म का पालन करना ।

साधु के कुछ लक्षण बतलाते हुए कहा गया है—सच्चा साधु दीक्षा अंगीकार करने के बाद अपने कुटुंबीजनों के प्रति मोहजन्य स्नेहभाव नहीं रखता है । सच्चा साधु सभी प्राणियों को आत्म तुल्य समझता है । विपरीत संयोगों में भी कभी आकुल-व्याकुल नहीं होता है । आने वाले परिषह व उपसर्गों को समझदारी पूर्वक सहन करता है । सुख-दु:ख में समभाव धारण करता है । निमित्त शास्त्रों के आधार पर अपनी आजीविका चलाने की कोशिश नहीं करता है । सुंदर व मधुर शब्द आदि विषयों में कभी आकर्षित नहीं होता है ।

ब्रह्मचर्य यह तो साधु जीवन का प्राण है । जिस प्रकार प्राणरहित कलेवर की कोई कीमत नहीं है, उसी प्रकार ब्रह्मचर्य रहित साधु की भी कोई कीमत नहीं है । ब्रह्मचर्य व्रत के भंग में सभी व्रतों का भंग है ।

''जो साधु मन, वचन और काया से निर्मल ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, उन्हें देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नर भी सद्भावपूर्वक नमस्कार करते है ।'' यह ब्रह्मचर्य धर्म ध्रुव है, अन्य दर्शनों को भी मान्य है । इस व्रत का निरतिचार पालन आत्मा को शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्रदान करता है ।

श्रद्धा और भक्ति

श्रद्धा के बल पर ही
देह में रहे आत्मा के अस्तित्व को
स्वीकार किया जा सकता है ।
उसी प्रकार मूर्ति में रहे भगवान को
स्वीकार करने के लिए
श्रद्धा और भक्ति दोनों जरुरी है ।
जिसके दिल में प्रभु के प्रति
श्रद्धा और भक्ति हैं, वह मूर्ति में भी
प्रभु के दर्शन कर सकता है ।
मोर का आगमन होते ही चंदन वृक्ष
पर लिपटे हुए सर्प पलायन करने लग
जाते है, बस, इसी प्रकार हृदय में
प्रभु का आगमन होते ही
आत्मा पर लगे कर्म के बंधन तत्काल
शिथिल होने लगते है ।

51

गुलाम बनी आत्मा संसार में भटकती है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 28-10-2019**

वीर प्रभु का संदेश है अर्थ और काम नाम के ही पुरुषार्थ हैं, वास्तविक नहीं । ये पुरुषार्थ तो आत्मा के लिए महा अनर्थकारी हैं ।

भूतकाल में अपनी आत्मा ने इन पुरुषार्थों के पीछे अपनी बहुत सी शक्ति का व्यय किया है, परिणामस्वरूप आत्मा को कुछ भी फायदा नहीं हुआ है बल्कि आत्मा को दुर्गति में ही भटकना पड़ा है ।

अर्थ और काम की गुलाम बनी आत्मा संसार में जहाँ-तहाँ भटकती है जबकि अर्थ और काम की विजेता आत्मा सर्वत्र विजयश्री प्राप्त करती है और अंत में शाश्वत अजरामर मोक्षपद की भोक्ता बनती है ।

शाश्वत पद पाना है तो अर्थ और काम का सर्वथा त्याग करना होगा । इस जीवन में यदि सर्वथा त्याग संभव न हो तो कम-से-कम अर्थ और काम की गुलामी तो छोड़नी होगी । उन पर अंकुश तो लाना ही होगा ।

एक मात्र मोक्ष ही सच्चा और वास्तविक पुरुषार्थ है । मोक्ष में क्यों जाना है ? क्योंकि मोक्ष में ही जीवात्मा की सभी इच्छाएँ पूर्ण होती हैं । जीवात्मा की सबसे पहली इच्छा जीने की है ।

सदाकाल जीवन जीने की इच्छा होने पर भी संसारी जीव को बार-बार मरना पड़ता है । जितना आयुष्य बाकी होता है, तब तक संसारी जीव जी सकता है, आयुष्य पूरा होते ही उसे मरना पड़ता है ।

जीने की लाख-लाख इच्छा होते हुए भी आयुष्य पूरा होते ही अपना देह छोड़ना पड़ता है । कई लोग जीवन जीने के लिए लाख-लाख कोशिश करते हैं । अनेक औषध-उपचार करते हैं । मंत्र-तंत्र का

आलंबन लेते हैं । कीमती इंजेक्शन लेते हैं, फिर भी उन्हें अवश्य मरना ही पड़ता है ।

जन्मा हुआ बालक, जिसने अभी तक अपनी माँ का मुँह भी नहीं देखा है, इस फानी दुनिया को छोड़कर चला जाता है । आखिर क्यों ? क्योंकि आयुष्य पूरा हो चुका है । अपने एक श्वासोच्छ्वास में निगोद के जीव को 17 बार मरना पड़ता है । आप लोगों की एक सामायिक होती है, और उसमें निगोद के जीव के 65536 भव हो जाते हैं । संसार में जन्म की पीड़ा का कोई पार नहीं है और मृत्यु की पीड़ा का भी कोई पार नहीं है । मोक्ष में जन्म नहीं, वृद्धावस्था नहीं, मृत्यु की वेदना नहीं एक मात्र जीवन है और वह भी सदा के लिए ।

जीवात्मा की दूसरी इच्छा सुखप्राप्ति की है । संसार में सभी जीवों की इच्छा सुख पाने की है, परन्तु संसार में जीवात्मा की यह इच्छापूर्ति होती नहीं है ।

संसार में सुख का नामोनिशान नहीं है और दुःख का पार नहीं है । नरक गति में परमाधामियों की पीड़ा, तिर्यंच गति में भूख-प्यास, सर्दी-गर्मी की पीड़ा, मानव-जीवन में शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, पारिवारिक और सामाजिक दुःखों का पार नहीं है ।

मानव-देह के साथ भी अनेक रोग जुड़े हैं, अतः सुख का नाम नहीं है । देवगति में भौतिक सुख है, परन्तु उस सुख का भी एक दिन अन्त आ जाता है । अमाप भौतिक सुख भोगनेवाले देवताओं को गर्भावास की भयंकर पीड़ा सहन करनी पड़ती है । देवताओं को भी अगले जन्म में एकेन्द्रिय आदि की पीड़ा सहन करनी पड़ती है ।

सारा संसार दुःखों से भरा हुआ है, जबकि मोक्ष में दुःख का लेश भी नहीं है । मोक्ष अनंत सुखों से भरपूर है ।

52 नूतन वर्ष मंगलमय हो

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 29-10-2019**

नूतन वर्ष के इस मंगल प्रभात में हम प्रभु से यही प्रार्थना करते हैं कि यह वर्ष हम सबके लिए मंगलमय बने ।

`मंगल' शब्द की व्याख्या करते हुए पूर्वाचार्य महर्षि ने लिखा है-

'आत्मा में रहे भाव-संसार को गला दे, उसी का नाम मंगल है ।'

संसार में आत्मा को जन्म लेना पड़ता है, संसार में आत्मा को मरना पड़ता है, संसार में आत्मा को जरा अवस्था की पीड़ा भुगतनी पड़ती है । संसार में आत्मा को आधि-व्याधि और उपाधि की पीड़ा सहन करनी पडती है । उन सब दुःखों का मूल आत्मा में रहा भाव संसार ही है । भाव संसार अर्थात् राग-द्वेष की परिणति ! आत्मा राग-द्वेष से मुक्त हो जाय तो आत्मा बाहर के सभी दुःखों से मुक्त हो सकती है ।

'मंगल' शब्द की दूसरी व्याख्या करते हुए कहा है **'मंगं विघ्नं लुनाति इति मंगलम्'** जो विघ्नों का विच्छेद करे, उसका नाम मंगल है । व्यापार, विवाह, प्रयाण, गृह प्रवेश आदि के प्रसंगों में हर व्यक्ति मंगल करता है, परन्तु वह द्रव्य मंगल कहलाता है । उससे विघ्ननाश होगा ही, ऐसी कोई गारन्टी नहीं है । जब कि प्रभु ने हमें वह भाव मंगल बतलाया है, जो हमारे अंतरंग शत्रुओं का अवश्य नाश करता है । अध्यात्मयोगी पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. ने भावमंगल पैदा करने के लिए एक सुंदर त्रिपदी प्रदान की है ।

जिस प्रकार गंगा-यमुना और सरस्वती इन तीन नदियों का जहाँ संगम हुआ है, वह स्थल प्रयाग-तीर्थ बन गया है । बस, इसी प्रकार जिसके जीवन में नवकार का जाप, आयंबिल का तप और ब्रह्मचर्य का खप आ जाता है, वह आत्मा स्वयं तीर्थ-स्वरुप बन जाती है । नवकार की साधना हमें नम्र बनाती है, झुकाना सिखाती है । जो

परम (श्रेष्ठ) आत्माएँ हैं, उन्हें झुकने से अपने भीतर रही पामरता दूर हो जाती है, हमारी आत्मा स्वयं परम बन जाती है । मानव का सबसे बडा दुश्मन अहंकार है । आदमी अपने अहं को पुष्ट करने के लिए, अहं को बचाने के लिए सब कुछ त्याग कर देगा । एक विशाल साम्राज्य का त्याग करना आसान है, परन्तु अपने भीतर रहे अहं को छोड़ना कठिन है ।

अहं को छोड़ना है तो जो अहं भाव से मुक्त बने हैं, ऐसे पंच परमेष्ठी की शरणागति का सहर्ष स्वीकार करो । नवकार की शरणागति आपको अहं भाव से मुक्त करेगी । जिस प्रकार कप में चाय भरी हुई हो तो अब उसमें दूध भरा नहीं जा सकता है, दूध भरना हो तो कप में रही चाय को खाली करना पडेगा, अपने भीतर 'अहं' दूस-दूसकर भरा हुआ है, वह अहं भाव जब तक दूर नहीं होगा, तब तक अपनी आत्मा अर्हं पद को प्राप्त नहीं कर सकेगी ।

अहं को खाली करना है तो पंच परमेष्ठी की सच्चे दिल से शरणागति का स्वीकार कर लें । नवकार की आराधना नवकार की उपासना हमें नम्र बनाती है, हमारे भीतर रहे अहंकार को उलेच देती है ।

भजन-भोजन

आत्मा में भोजन के संस्कार अनादिकाल से है, अतः भोजन के समारोह में अच्छी उपस्थिति हो जाती है, जब कि भजन (धर्म) के संस्कार नहींवत् हैं, अतः भजन के प्रसंग में उपस्थिति नगण्य होती है । भोजन से होनेवाली तृप्ति क्षणिक है, जब कि भजन से होनेवाला आनन्द आत्मा को स्थायी सुख देनेवाला है ।

53

तीर्थयात्रा की महिमा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 30-10-2019**

श्रावक-जीवन में तीर्थ एवं तीर्थयात्रा की खूब-खूब महत्ता है, क्योंकि घर छोड़कर तीर्थभूमि में जब जाते हैं, तब वहाँ का वातावरण कुछ अलग ही होता है। घर में अर्थ और काम से केन्द्रित जीवन होता है, जबकि तीर्थ में त्याग और संयम की साधना होती है।

साधु-जीवन में तीर्थयात्रा का इतना अधिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि साधु स्वयं जंगमतीर्थ रुप है और उस जीवन में संयम यात्रा की प्रधानता है।

साधु-जीवन में संयम के योगों को बाधा न आये, इसी ढंग से जीवन जीना होता है, इसलिए तीर्थयात्रा गौण है, संयम यात्रा प्रधान है, जबकि गृहस्थ का जीवन तो आरम्भ-समारम्भ में ही डूबा होता है, अतः उस जीवन में तीर्थयात्रा खूब महत्त्वपूर्ण है।

तीर्थयात्रा का मुख्य उद्देश्य भवयात्रा का अंत लाने का है। भवयात्रा का अंत लाने के लिए वह यात्रा, भावयात्रा बननी चाहिए। भावयात्रा बिना भवयात्रा का अंत नहीं है। भावयात्रा अर्थात् भवभ्रमण तो खूब किया है, अब उसका अंत लाना है अतः तीर्थयात्रा, तीर्थयात्रा के नियमपूर्वक होनी चाहिए। वर्तमान में लगभग तीर्थयात्रा के नियमों का श्रावकों को ज्ञान ही नहीं है तो कई लोग जान-बुझकर भी उन नियमों के पालन की उपेक्षा कर रहे हैं।

वास्तव में तीर्थयात्रा कष्टप्रद होनी चाहिए। कष्ट सहन करने के बाद जब प्रभु मिलते हैं, तब उस प्रभुमिलन का आनंद कुछ और ही होता है। जैनों के अतिप्राचीन और मुख्य तीर्थ लगभग जंगल या पर्वत पर ही आये हुए हैं।

शत्रुंजय, गिरनार, सम्मेतशिखर, आबू और अष्टापद तीर्थ ये

पाँच मुख्य तीर्थ कहलाते हैं, ये सभी तीर्थ पर्वत पर और काफी ऊँचाई पर आये हुए हैं, जहाँ भौतिक सुख-सामग्रियों का अभाव होता है ।

जैनों के कई तीर्थ जंगल में आये हुए हैं अर्थात् जहाँ लोक-बस्ती का अभाव है । जहाँ आवागमन के साधन कम हैं ।

राता महावीरजी, मुछाला महावीरजी, दियाणा आदि कई तीर्थ ऐसे हैं, जहाँ बस्ती का सर्वथा अभाव है । जहाँ लोकबस्ती नहीं होने से मौज-मजा और सुख के साधनों का अभाव है । जहाँ होटलें नहीं हैं, रेस्टोरेंट नहीं हैं, हाथलॉरियाँ नहीं हैं ।

प्रभुमिलन का सच्चा आनंद भी यही है कि हमें संसार के सभी भौतिक सुख नीरस लगें, उन सुखों के प्रति दिल में थोड़ा भी आकर्षण भाव न रहे, क्योंकि वे सुख असली नहीं, बल्कि नकली हैं ।

दुःखों को सहर्ष स्वीकार किये बिना आत्मा का सच्चा सुख मिलता नहीं है, इसीलिए प्रभु की यात्रा कष्टप्रद है । सुखों को लात मारना और दुःखों को हँसते मुँह स्वीकार करना-यह प्रक्रिया जिसे मंजूर हो, वो ही प्रभु को पा सकता है ।

आज्ञापालन

परमात्मा की संपूर्ण आज्ञाओं का पालन
साधु-जीवन के सिवाय शक्य नहीं है ।
गृहस्थ जीवन में परमात्मा की आंशिक आज्ञाओं का ही
पालन शक्य है, इसी कारण साधु जीवन में
पूर्ण धर्म है, जब कि श्रावक जीवन में
आंशिक धर्म है । श्रावक धर्म का पालन भी
साधु धर्म की प्राप्ति के लक्ष्यपूर्वक होना चाहिए ।

54 श्रावक जीवन की महत्ता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 31-10-2019**

श्रावक अर्थात् संसार रूपी सरोवर में जलकमल की तरह अनासक्त भाव से जीवन जीनेवाला । जिस प्रकार कमल कीचड़ में पैदा होता है और जल से बढ़ता है, फिर भी वह कमल, कीचड़ व जल से अलिप्त रहता है । बस इसी प्रकार मुक्ति का जो तीव्र अभिलाषी है, ऐसा श्रावक संसार में पैदा होने पर भी अपने आपको संसार से अलिप्त रखता है ।

श्रावक अर्थात् अविरति के पाप से डरने वाला । श्रावक अर्थात् विरक्ति में जीने के लिए प्रयत्नशील ।

वंदितु-सूत्र में कहा है-**'यद्यपि सम्यग्दृष्टि जीव संसार में पाप की क्रियाएँ करता है, फिर भी उसे अल्प पाप कर्म का बंध होता है, क्योंकि वह तीव्र भाव से आसक्तिपूर्वक पाप नहीं करता है ।'**

जैसे क्षय (T.B.) का रोगी यही चाहता है कि मै इस रोग से सर्वथा मुक्त बन जाऊँ...और इसी उद्देश्य से वह डॉक्टर के द्वारा निर्दिष्ट छह-बारह महीने दवाई का कोर्स (Course) पूरा करता है । सर्वथा रोगमुक्ति की तीव्र इच्छा होने पर भी जैसे दवा के द्वारा उसका रोग प्रतिदिन घटता जाता है । इसी प्रकार आत्मा को कर्मों का क्षयरोग T.B. लगा हुआ है । आत्मा का पूर्ण आरोग्य मोक्ष में है और उसे पाने के लिए विरति धर्म के पालन रूपी दवा (कोर्स Course) लेनी पड़ती है ।

जितने अंश में हम विरति धर्म का पालन करते जाएंगे, उतने ही अंश में हम कर्म के रोग से मुक्त होते जाएंगे और इसके फलस्वरूप हम क्रमशः कर्मरोग से सर्वथा मुक्त हो सकेंगे ।

विरति अर्थात् आस्रव द्वारों को बंद करना अर्थात् जिन प्रवृत्तियों से आत्मा कर्मबंध करती है, उन प्रवृत्तियों का त्याग करना ।

विरति धर्म के दो भेद हैं– 1) सर्वविरति और 2) देशविरति । सर्वविरति अर्थात् मन, वचन और काया से पापों का सर्वथा त्याग ।

देशविरति अर्थात् सभी पापों को त्याज्य (छोड़ने योग्य) मानते हुए भी आंशिक पापों का त्याग ।

देव व नारक अविरति के पाप में डूबे हुए हैं । देशविरति की आराधना मनुष्य व तिर्यंच भी कर सकते हैं, जबकि सर्वविरति की आराधना एक मात्र मनुष्य ही कर सकता है ।

अनंतज्ञानी परमात्मा ने बताया है कि मानव जीवन की सफलता रत्नत्रयी की संपूर्ण आराधना अर्थात् संयम जीवन के स्वीकार व पालन में ही है, परन्तु जो आत्मा शारीरिक अशक्ति या आसक्ति के पाप के कारण संयम के स्वीकार व पालन में समर्थ नहीं हो, उसे कम-से-कम श्रावक जीवन के अलंकार स्वरूप सम्यक्त्व सहित 12 व्रतों का स्वीकार अवश्य करना चाहिये ।

भावपूर्वक इन व्रतों का पालन करने से चारित्र मोहनीय के अंतराय टूटते हैं और आत्मा इसी भव में या आगामी भव में चारित्रपालन के लिए समर्थ बनती है ।

गृहस्थजीवन का त्याग करने वाले निर्ग्रंथ मुनि सर्वविरति धर्म का पालन करते हैं । सर्वविरति का अर्थ है–सावद्य प्रवृत्ति का सर्वथा त्याग । अर्थात्-सर्वविरति आत्मा मन, वचन और काया से न तो किसी प्रकार की सावद्य प्रवृत्ति स्वयं करती है, न ही दूसरे को करने की प्रेरणा करती है और न ही किसी के द्वारा किये गये पाप की अनुमोदना करती है ।

मोक्ष

चोविहार छट्ठतप के साथ जो पुण्यशाली आत्मा शत्रुंजय-गिरिराज की सात यात्राएं करती है, वह आत्मा प्रायः तीसरे भव में शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त कर लेती है ।

55 ज्ञान पंचमी अर्थात् ज्ञान की महत्ता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 01-11-2019**

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र रूपी रत्नत्रयी के इस मार्ग में सम्यग्ज्ञान Centre केन्द्र में है । जिस प्रकार दो कमरो के बीच में रखा दीप दोनों कमरों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार यह ज्ञान, सम्यग्दर्शन को भी निर्मल करता है और चारित्र की प्राप्ति का भी कारण बनता है ।

ज्यों-ज्यों तारक अरिहंत परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट जीव आदि नौ तत्वों का गहन अध्ययन किया जाता है, त्यों-त्यों जिनेश्वर परमात्मा के वचनों पर श्रद्धा दृढ़ होती है और इसके साथ विरति अर्थात् चारित्र के परिणाम भी पैदा होते हैं । यद्यपि चैत्र व आसोज मास की शाश्वती ओली में रत्नत्रयी के एक-एक पद की स्वतंत्र आराधना करते हैं, फिर भी सम्यग्ज्ञान की आराधना-उपासना के लिए स्वतंत्रपर्व है ।

आज का दिन महामंगलकारी दिन है, आज के दिन को ज्ञानपंचमी भी कहते हैं । आज हमें सम्यग्ज्ञान की आराधना उपासना करनी है । ज्ञान की आराधना हेतु शक्य हो तो पौषधव्रत के साथ उपवास करना चाहिए ।

मति, श्रुत आदि 5 ज्ञानों में 4 ज्ञान मूक कहलाते हैं । 5 ज्ञानों में से मात्र एक श्रुतज्ञान का ही आदान-प्रदान हो सकता है । मुख्यतया श्रुतज्ञान ही उपकारक होने से उसी की स्थापना एवं पूजा की जाती है ।

केवलज्ञान, पूर्णज्ञान होने पर भी उसका स्वतंत्ररुप से दान नहीं हो सकता है । दान मात्र श्रुतज्ञान का ही हो सकता है । तीर्थंकर परमात्मा अपनी वाणी द्वारा जो उपदेश देते हैं, वह द्रव्यश्रुत कहलाता है, प्रभु के मुख से इस द्रव्यश्रुत के श्रवण से सुननेवालों के श्रुतज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम होता है, वह क्षयोपशम ही भावश्रुत कहलाता है ।

प्रभु का शासन भी श्रुतज्ञान के आधार पर ही चलता है । श्रुतज्ञान अर्थात् आगमशास्त्र से ही वीतराग वचन के सत्य का बोध होता है ।

जैन शासन के साधुओं के लिए तो यह श्रुतज्ञान आँख समान कहा गया है । जिस प्रकार सामान्य इंसान आँख से मार्ग देखकर उस मार्ग पर चलता है, उसी प्रकार साधु, शास्त्र द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलते हैं ।

पू. महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म. ने **ज्ञानसार** में ठीक ही कहा है–**'साधवः शास्त्र चक्षुषा'** अर्थात् शास्त्र ही साधु की आँख है, उसी से मोक्ष मार्ग देखकर आगे बढ़ना है । वर्तमान काल की सबसे बड़ी समस्या यह है कि अधिकांश लोग सम्यग्ज्ञान के स्वरुप से अनभिज्ञ हैं । वास्तव में, सम्यग्ज्ञान वही है, जो आत्मा को आत्महितकर प्रवृत्ति में जोड़े और पाप-प्रवृत्ति से बचावे । जो ज्ञान आत्मा को आत्म-हित में नहीं जोड़ता हो वह ज्ञान वास्तव में मिथ्याज्ञान ही है ।

जगत् में रहे कई पदार्थों को उपमा द्वारा समझाया जाता है । ज्ञानावरणीय कर्म का स्वभाव आँख पर लगी पट्टी जैसा है । जिस प्रकार आँख पर मोटे कपड़े की पट्टी बाँध दी जाती है तो कुछ भी दिखता नहीं है, परन्तु उस पट्टी में कहीं छेद हो जाय अथवा पट्टी का कपड़ा पतला हो तो कुछ दिखाई देता है, बस, इसी प्रकार जब ज्ञानावरणीय कर्म उदय में आता है, तब आत्मा में रहे ज्ञान गुण के ऊपर आवरण आ जाता है, परन्तु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम हो तो आत्मा में कुछ अंश में ज्ञान प्रकट होता है और उस कर्म का सर्वथा क्षय हो जाय तो आत्मा में अनंतज्ञान गुण प्रकट हो जाता है ।

56 विरति धर्म का बंधन भव-भ्रमण के बंधनों से मुक्ति दिलाता है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 02-11-2019**

आत्मा के विकासमार्ग में आत्मा के लिए मिथ्यात्व और अविरति सबसे बड़े शत्रु हैं । इन शत्रुओं का अंत करके ही आत्मा अपने सच्चे विकास की ओर आगे बढ़ सकती है ।

मिथ्यात्व का अंत कर समकित को प्राप्त करना, अत्यंत ही कठिन साधना है । समकित की प्राप्ति बाद भी आत्मा में पाप कर्म के विराम रूप सर्वविरति और देशविरति की प्राप्ति होना और भी कठिन है ।

समकित की प्राप्ति तो चारों गतियों में संभव है । यावत् सातवीं नरक में रहा नारक भी, अपने पूर्व जन्म के पापों को जानकर उस पर पश्चात्ताप करके समकित की प्राप्ति कर सकता है । देवता, मनुष्य और पशु तो परमात्मा के धर्मोपदेश-श्रवण से समकित प्राप्त कर सकते हैं ।

समकित की प्राप्ति के बाद जब आत्मा पर से कर्म का भार कम होता है, तभी आत्मा को पाप कर्म के व्यापार से रूकने और विरति धर्म की आराधना करने का परिणाम जगता है ।

देवता और नारक अपने जीवन में विरति धर्म की आराधना नहीं कर सकते । पशु के जीवन में भी मात्र आंशिक पाप की विरति स्वरूप देशविरति का पालन हो सकता है । परंतु सर्व पाप से विराम स्वरूप सर्वविरति धर्म की आराधना मात्र मनुष्य ही कर सकता है ।

मनुष्यजन्म की सार्थकता विरति धर्म की आराधना में है और इसलिए साक्षात् तीर्थंकर परमात्मा भी मनुष्य भव की प्रशंसा करते हैं ।

मनुष्य ही जीवन में वैराग्य एवं सर्वविरति की आराधना कर सकता है, परंतु जिसके जीवन में इतना तीव्र वैराग्य न हो, तो आंशिक

पापत्याग स्वरूप देशविरति की आराधना कर सकता है । विरति एक ऐसा शस्त्र है, जो आत्मा के अनन्त भव भ्रमण को नष्ट कर सकता है ।

जब पैर में काँटा चुभता है, तब उसे निकालने के लिए दूसरा काँटा चाहिए ! काँटे से ही काँटा निकल सकता है । वैसे ही विरति धर्म एक ऐसा उपाय है, जो भवभ्रमण के बंधन से आत्मा को मुक्ति प्रदान कर सकता है ।

पाप त्याग की प्रतिज्ञा का दृढ़ता से पालन किया जाए, तो वह प्रतिज्ञा आत्मा को इसलोक, परलोक और परमलोक स्वरूप मोक्ष का सुख देने में भी समर्थ है ।

श्रावक जीवन के समकित मूल बारह व्रतों में खूब लचीलापन है । श्रावक के बारह व्रतों में 13 अरब से भी अधिक विकल्प रहे हुए हैं । इन अनेक विकल्पों में किसी भी विकल्प से श्रावक अपने जीवन में पाप का त्याग कर सकता है ।

जब तक हम पापकर्म के त्याग की प्रतिज्ञा नहीं करते हैं, तब तक उस पापकार्य को नहीं करते हुए भी उस पाप के निमित्त पापकर्म का बंध चालू रहता है ।

वीतराग परमात्मा के धर्म की इतनी अधिक सूक्ष्मता है कि पूर्व जन्म में रखे गए गाड़ी-बंगले-उद्योग की सामग्रियाँ, लड़ाई के हथियार आदि सभी से आज भी हमारा संबंध जुड़ा है । उन साधन सामग्रियों से होने वाले पाप कार्य में हमारी पाप की भागीदारी चालू रहती है ।

इस पाप की भागीदारी को तोड़ने, अपने पूर्व के जन्मों में किये पापाचरण से संबंध तोड़ने के लिए सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा, सद्गुरु एवं चतुर्विध श्री संघ के सामने, उनकी साक्षी में पापों का विसर्जन करना चाहिए ।

We should work hard towards achieving the 'Shukla Leshya'.

57 श्रावक जीवन की आचार संहिता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 03-11-2019**

श्राद्धविधि मूल ग्रन्थ 17 गाथाओं का है और उस पर 6761 श्लोक प्रमाण **'विधिकौमुदी'** नाम की संस्कृत टीका है । इस ग्रन्थ निर्माण में श्री जिनहंस गणि आदि विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है ।

'श्राद्धविधि' मूल ग्रन्थ प्राकृत भाषा में है और उसकी टीका संस्कृत भाषा में है । अंग्रेजी आदि भाषाओं के मोह के कारण श्रावक वर्ग में प्राकृत-संस्कृत भाषा का ज्ञान दुर्लभ बनता जा रहा है । ऐसे समय में इन महान् ग्रन्थों का अनुवाद आवश्यक हो जाता है । मुख्यतया श्रावक के लिए निर्मित इस ग्रन्थ को यदि श्रावक न पढ़े तो इस ग्रन्थ का लाभ ही क्या ?

यह संसार अनादि है । इस संसार में आत्मा और कर्म का संयोग अनादिकाल से है । इस कर्म-संयोग का मूल आत्मा के ही राग-द्वेष परिणाम (अध्यवसाय) हैं । राग-द्वेष के कारण आत्मा कर्म का बन्ध करती है और उसके फलस्वरुप एक गति से अन्य गति में परिभ्रमण कर संसार में भटकती रहती है ।

अज्ञान और मोह सन्मार्ग प्राप्ति में बाधक है और इसी कारण अज्ञान व मोह से ग्रस्त आत्माएँ सुख को पाने के लिए ज्यों-ज्यों चेष्टाएँ करती है, त्यों-त्यों वे दुःख के गर्त में गिरती जाती हैं और नरक-तिर्यंच की घोरातिघोर यातनाओं को सहन करती है ।

अज्ञान और मोह के गाढ़ अन्धकार में जहाँ-तहाँ भटकती हुई आत्माओं के उद्धार के लिए परम-करुणावतार तारक अरिहन्त परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद धर्म-तीर्थ की स्थापना करते हैं ।

अरिहन्त परमात्मा के द्वारा स्थापित यह शासन भव-सागर में जहाज के समान है । अरिहन्त परमात्मा इस शासन रूपी जहाज के

निर्यामक हैं और साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका रूप चतुर्विध संघ इस तीर्थ रूपी जहाज में बैठे हुए यात्रिक हैं ।

तारक अरिहन्त परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रतिदिन प्रथम और अन्तिम प्रहर में धर्मदेशना देकर भव्यात्माओं को इस तीर्थ रूपी जहाज में प्रवेश कराते हैं । जो भव्यात्माएँ प्रतिबोध पाकर इस तीर्थ रूपी जहाज में प्रवेश पा लेती हैं, वे आत्माएँ अल्प भवों में भवसागर के पार को प्राप्त होकर अजरामर, शाश्वत मोक्षपद को प्राप्त कर लेती हैं ।

मोह के जटिलबन्धन में से शीघ्र मुक्ति पाने के लिए तारक परमात्मा नें सर्वविरति स्वरूप साधु धर्म का उपदेश दिया है और जो आत्माएँ भौतिक सुख की आसक्ति एवं शारीरिक अशक्ति के कारण साधु धर्म का पालन करने में सक्षम नहीं है, उनके उद्धार के लिए अरिहन्त परमात्मा ने देशविरति स्वरुप श्रावक धर्म का प्रतिपादन किया है ।

आज्ञा पालन

प्रभु की आज्ञा का पालन करनेवाला
प्रभु के एकदम पास में है और प्रभु
की आज्ञा का भंग करनेवाला
प्रभु से कोसों दूर है ।
जैन शासन आज्ञा प्रधान है ।
जिनाज्ञा के पालन पूर्वक किया गया
छोटा भी धार्मिक अनुष्ठान
महान् लाभ का कारण बनता है और
जिनाज्ञा की उपेक्षा कर किया गया
बड़ा भी अनुष्ठान
लाभदायी नहीं होता है ।

58 गृहस्थजीवन में कदम-कदम पर हिंसा है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 04-11-2019**

संपूर्ण निष्पाप जीवन जीए बिना आत्मा कर्म से मुक्त नहीं हो सकती है । संपूर्ण पापमुक्त जीवन जीना हो तो साधु धर्म (पाँच महाव्रतों की प्रतिज्ञा) के स्वीकार बिना अन्य कोई विकल्प नहीं है ।

जिन आत्माओं में संपूर्ण निष्पाप जीवन जीने का दृढ़ मनोबल नहीं है, उन आत्माओं के कल्याण के लिए वीतराग परमात्मा ने श्रावक धर्म बताया है । Slow and steady wins the race के नियमानुसार धीरे-धीरे थोड़े-थोड़े पापों का त्याग करते जाएंगे तो भविष्य में संपूर्ण निष्पाप जीवन जीने की भी शक्ति मिल सकेगी । बस, इसी बात को लक्ष्य में रखकर श्रावकजीवन में हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह रुपी बड़े-बड़े पापों का आंशिक त्याग किया जाता है ।

गृहस्थ जीवन में कदम-कदम पर हिंसा है । स्थावर जीवों की हिंसा उसके जीवन से जुड़ी हुई है, अतः वह स्थावर जीवों की हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा न कर सिर्फ त्रस जीवों की हिंसा का ही आंशिक त्याग करता है । इस प्रकार पाँच अणुव्रतों की प्रतिज्ञा स्वीकार कर वह आंशिक पापों से मुक्त बनता है ।

पाँच अणुव्रतों के बाद जो तीन गुणव्रत हैं वे हिंसा आदि पापों को और अधिक कम करने के लिए हैं । छट्ठे व्रत द्वारा जाने-आने में नियंत्रण करने से वह अनेक पापों से बच जाता है ।

गृहस्थ जीवन में अधिकांश पाप भोजन और व्यापार के विषय में होते हैं, अतः सातवें व्रत के स्वीकार द्वारा वह सर्व प्रथम 22 प्रकार के अभक्ष्य पदार्थों का त्याग करता है, उन अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण में निरर्थक हिंसा रही हुई है । उन अभक्ष्य पदार्थों का त्याग कर भी वह आराम से जीवन निर्वाह कर सकता है ।

गृहस्थ को अपना जीवन निर्वाह करने के लिए अर्थार्जन जरूरी है, अतः सातवें व्रत के माध्यम से वह उन धंधों का त्याग करता है, जिनमें आरम्भ-समारम्भ बहुत अधिक है । आठवें व्रत द्वारा श्रावक मौज-मजा संबंधी पापों का आंशिक अथवा संपूर्ण त्याग करता है ।

इस प्रकार इन आठ व्रतों के द्वारा जब श्रावक बड़े-बड़े पापों का सहजता से त्याग करने में समर्थ हो जाता है, तब उसे साधु-जीवन के आस्वाद रूप चार-शिक्षाव्रत दिए जाते हैं । श्रावक जीवन के इन चार शिक्षा व्रतों में साधु-जीवन की ट्रेनिंग है ।

नौवें व्रत द्वारा सिर्फ 48 मिनिट के लिए और ग्यारहवें व्रत के द्वारा 24 घंटे के लिए साधुवत् जीवन जीने का प्रशिक्षण मिलता है ।

इसी कारण सामायिक और पौषध में रहा श्रावक साधुवत् कहलाता है । पौषध व्रत में भी एक साथ सामायिक की प्रतिज्ञा है ।

पौषध व्रत में आहार का संयम है । अभक्ष्य पदार्थों का त्याग तो है ही, उसके साथ भक्ष्य पदार्थ दिन में एक बार से अधिक नहीं खाने की प्रतिज्ञा हो जाती है । साधु के लिए हमेशा 'एगभत्तं च भोयणं' का जो विधान है, उसकी ट्रेनिंग पौषध द्वारा मिल जाती है ।

साधु तो चलता भला

कार्तिक पूर्णिमा से साधु-साध्वी के विहार
पुनः प्रारंभ होते हैं ।
कहावत हैं-*बहता पानी निर्मला, पडे सो गंदा होय ।*
साधु तो चलता भला, दाग न लागे कोय ।।
कार्तिक पूर्णिमा के दिन ऋषभदेव के
पुत्र द्राविड-वारिखिल्ल 10 करोड मुनियों
के साथ गिरिराज पर मोक्ष गए थे ।

59 दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 05-11-2019**

धन की सफलता सुपात्रदान में है, बुद्धि की सफलता तत्त्व के चिंतन में है, देह की सफलता व्रत धारण करने में है, उसी प्रकार धन की सफलता दान में ही है ।

पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु जो दान देकर धन का सदुपयोग नहीं करता है, उसका धन पाप मार्ग में ही जाता है । धन का संग्रह व स्व-उपयोग दोनों पापबंध के कारण हैं, जबकि धन का दान पुण्यबंध का कारण है ।

शास्त्र में धन की तीन गतियाँ बताई गई हैं-दान, भोग और नाश । धन का श्रेष्ठ उपयोग दान है । दान तो मानव-जीवन का अलंकार है । अपने पेट की चिंता तो पशु भी करता है और अपने पेट के लिए पशु भी प्रयत्नशील रहता है, जबकि मानव के पास तो बुद्धि है, उस बुद्धि से वह सोच-समझ सकता है । अपने हित की भाँति दूसरे के हित का भी विचार कर सकता है । दान तो मानव-जीवन का अलंकार है ।

मात्र अपना ही विचार करना पशुता है, जबकि दूसरों का विचार करना मानवता है । पशु मात्र अपना ही पेट भर सकता है, परन्तु एक समर्थ मानव, हजारों पशुओं का भी पेट भर सकता है ।

इतिहास के पृष्ठों पर उन दानवीरों के नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं, जिन्होंने दिल-खोलकर दान दिया था । कर्ण-जगडूशा, भामाशा आदि के नाम से भला कौन अपरिचित है, जो दान धर्म के कारण जगमशहूर हैं ।

जगत् को दान धर्म का आदर्श बतलाने के लिए ही तारक तीर्थंकर परमात्मा भी दीक्षा अंगीकार करने के पहले गृहस्थ जीवन में 1 वर्ष तक दान करते हैं । वर्ष में वे परमात्मा 388 करोड़ 80 लाख स्वर्ण मुद्राओं का दान करते हैं । धनाढ्य व्यक्ति भी अपने भव्यत्व का निर्णय

करने के लिए तीर्थंकर परमात्मा के वरद हस्तों से दान ग्रहण करते हैं, क्योंकि अभव्य आत्मा तीर्थंकर के हाथों से दान नहीं पा सकती है ।

दानी का स्थान सदैव ऊँचा रहता है जो हाथ देता है वह सदैव ऊँचा रहता है और जो लेता है, वह हाथ नीचे रहता है ।

सागर के पास अपार जल संपत्ति होती है, फिर भी उसका स्थान नीचा है किन्तु बादल छोटे होने पर भी उनका स्थान ऊँचा रहता है, इसका एक मात्र कारण है, बादल हमेशा दूसरों को वर्षा के रूप में पानी देता है और सागर उसका संग्रह करता है । पुण्य के उदय से धन की प्राप्ति होती है, परन्तु उस धन के भोग की इच्छा करना पाप है । पुण्य से प्राप्त धन का सात क्षेत्रों में जो दान करता है, उसके लिए वह धन पुण्यानुबंधी पुण्य के बंध का कारण बन जाता है ।

जैसे शूरवीर के हाथ में रही तलवार रक्षण का काम करती है और बालक के हाथ में रही तलवार उसी के लिए मौत का कारण बन जाती है । इसी प्रकार सामान्य व्यक्ति के हाथ में रहा जहर मौत का कारण बनता है और वैद्य के पास रहा जहर, औषध का काम करता है, बस, इसी प्रकार कृपण के पास रहा धन उसकी दुर्गति का कारण बनता है, जबकि दानवीर के पास रही लक्ष्मी उसकी सद्गति का कारण बनती है । अतः धन को तारक बनाना या मारक बनाना, यह आपके ही हाथों में है ।

पाप नाश

शत्रुंजय गिरिराज को लक्ष्य बनाकर
जो आत्मा निर्मल चित्त से गिरिराज की ओर
एक-एक कदम बढाती है,
वह आत्मा कदम-कदम के साथ
करोडों भवों के पापों का क्षय कर देती है ।

60 श्रेयांसनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 06-11-2019**

जहाँ गृहस्थ रहते हैं, उसे घर कहा जाता है और जहाँ परमात्मा का वास होता है, उसे मंदिर कहा जाता है ।

मंदिर का भाग पवित्र होता है । वहाँ किसी प्रकार की बाह्य अशुद्धि नहीं होती है तो उसके साथ ही किसी भी प्रकार की पापप्रवृत्ति भी नहीं होती है ।

अपने गृह जिनालय में प्रभु की प्रतिष्ठा के पूर्व अपने मन मंदिर में भी प्रभु की प्रतिष्ठा होनी अनिवार्य है । अपने मन मंदिर में प्रभु को प्रतिष्ठित करने के लिए मन में रहे क्रोध, मान, ईर्ष्या, द्वेष आदि के कचरे को दूर करना होगा ।

साबुन आदि के द्वारा मलिन वस्त्र को स्वच्छ किया जा सकता है, परन्तु मन में रही मलिनता को दूर करने के लिए अपने मन को मैत्री-प्रमोद-करुणा और माध्यस्थ्य भावना से भावित करना चाहिए । इस जगत् में मेरा कोई शत्रु नहीं है । कोई मेरा बुरा करता है तो उसमें भी मेरे ही पूर्व जन्म के अशुभ कर्म का ही फल है ।

अपने घर में प्रभु की प्रतिष्ठा करने से प्रभु के साथ अपना नाता दृढ़ बनता है । गृह जिनालय में घर का प्रत्येक सदस्य अपनी अनुकूलतानुसार प्रभु की भक्ति कर सकता है ।

Beloved children! Now it is time for you to think whether you are with the protector or without a protector?

61 तीर्थ यात्रा की महिमा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 07-11-2019**

तीर्थयात्रा के लाभ अपार हैं, फिर भी सद्भाव पूर्वक तीर्थयात्रा करने के 12 लाभ बताए हैं । उन्हीं लाभों के बारे में आज कुछ विचार-विमर्श करना है ।

छ'री पालक यात्रासंघ में जुड़नेवाले यात्रिक को किसी प्रकार का आरम्भ-समारम्भ करना नहीं पड़ता है । कलिकालसर्वज्ञ हेमचन्द्राचार्यजी ने योगशास्त्र के तीसरे प्रकाश में श्रावक को तपे हुए लोहे के गोले की उपमा दी है । तपा हुआ लोहे का गोला जहाँ भी जाएगा, वहां जलाने का ही काम करनेवाला है । श्रावक के जीवन के साथ हिंसा जुड़ी हुई है । उसे अपने जीवन-निर्वाह के लिए हिंसा करनी पड़ती है । पुरुष को व्यापार-व्यवसाय करना पड़ता है तो स्त्रियों को रसोड़ा सँभालना पड़ता है ।

व्यापार-धंधे में भी आरम्भ-समारम्भ अर्थात् हिंसा जुड़ी हुई है । कपड़े या अन्य किसी वस्तु के Production के जितने भी कारखाने हैं, उनमें हिंसा जुड़ी हुई है । बिल्डिंग कंस्ट्रक्शन में भी खूब आरम्भ-समारम्भ है । यदि आप कारखाने के मालिक नहीं होंगे तो भी आपको तैयार माल खरीदने-बेचने में वाहन का उपयोग तो करना ही पड़ता है । गृहस्थ को कहीं भी आने-जाने में हिंसा जुड़ी हुई है । बहनों को भी सुबह उठकर रसोड़े में जाना होता है । रसोड़े में छह काय की हिंसा रही हुई है ।

❑ रसोई बनाने में कच्चे नमक का उपयोग होता है तो पृथ्वीकाय के असंख्य जीवों की हिंसा होती है ।

कच्चे पानी के उपयोग बिना रसोई बनती नहीं है, अतः उसमें अप्काय के असंख्य जीवों की हिंसा होती है । अग्नि पैदा किये बिना रसोई बनती नहीं है, अतः असंख्य तेउकाय के जीवों की हिंसा है । वायु के बिना अग्नि टिक नहीं सकती है अतः वायुकाय के असंख्य जीवों

की भी हिंसा है । रसोई बनाने के लिए अनाज पीसना पड़ता है-अतः वनस्पतिकाय की भी हिंसा है । रसोई में साग-सब्जी का उपयोग होता है, अतः वनस्पति की हिंसा है । साग-सब्जी में कई त्रस जीव भी होते हैं । जो रसोई बनाने में मर जाते है । इस प्रकार असंख्य जीवों की हिंसा के बिना गृहस्थ की रसोई तैयार नहीं हो पाती है । गृहस्थ को आरम्भ-समारम्भ करना पड़ता है, परन्तु आप छ'री पालक संघ यात्रा में जुडें, तो आप आरम्भ-समारम्भ से लगभग बच जाते हैं । यात्रासंघ में जुड़े श्रावक धंधा छोड़कर यहाँ आते हैं, अतः उन्हें व्यापार सम्बन्धी हिंसा करनी नहीं पड़ती है ।

धन की सफलता की तीन गतियाँ बताई गई हैं, दान, भोग और नाश । कृपण का धन ऐसे ही नष्ट होता है, वह न खा सकता है, न खिला सकता है । विलासी व्यक्ति के धन का उपयोग भोग के साधनों में ही होता है । परन्तु उत्तम आत्माओं के धन का उपयोग तो सिर्फ दान में ही होता है ।

धन की श्रेष्ठ गति दान है । धन के सदुपयोग अर्थात् दान के लिए मुख्य सात क्षेत्र बलाये गये हैं । छ'री पालक संघ के आयोजन में धन की सफलता है ।

गर्भावास

मानव भव प्राप्तकर, जिसने अभी तक,
शत्रुंजय गिरिराज की
स्पर्शना नहीं की है, तो अभी तक उसका
जन्म ही नहीं हुआ है ।
ठीक ही कहा है-
'गिरिवर फरसण नवि कर्या रे,
ते रह्यो गर्भावास सलूणा ।'

कषाय भयंकर हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 08-11-2019**

जीवात्मा के संसार-परिभ्रमण का मुख्य कारण ज्ञानावरणीय आदि 8 कर्म हैं । इन आठ कर्मों में सबसे मुख्य है मोहनीय कर्म । मोहनीय कर्म ही जीवात्मा को राग-द्वेष कराता है ।

संसार के सभी संघर्ष राग-द्वेष के कारण हैं और द्वेष का मुख्य कारण भी राग ही है । जब एक ही वस्तु के प्रति दो व्यक्तियों को राग है तो उसे पाने के लिए दोनों व्यक्ति पूरा पूरा प्रयत्न करेंगे । जब एक को मिलेगा और दूसरे को नहीं, तब दूसरा उसे पाने हेतु पहले से झगड़ा करके वस्तु हड़पने का प्रयत्न करेगा । जिससे द्वेष और शत्रुता पैदा होगी ।

इन राग-द्वेष के कारण ही चार कषाय पैदा होते हैं । द्वेष में से क्रोध और मान पैदा होते हैं और राग में से माया और लोभ पैदा होते हैं ।

ये चारों कषाय कसाई से भी ज्यादा खतरनाक हैं । कसाई तो मात्र अन्य पशु के द्रव्यप्राण लेकर एक जन्म में ही मारता है, जबकि कषाय करने से तो अन्य के नहीं बल्कि अपनी आत्मा के भाव प्राण रुप ज्ञानादि को, खत्म करते हैं ।

क्रोधादि कषाय हमारी आत्मा को अनंतकाल तक संसार में परिभ्रमण कराते हैं । इन चारों कषायों के परिमाण को मापने के लिए चार भेद बताए हैं । अनंतानुबंधी कषाय एक वर्ष से अधिक और जिंदगी भर तक चलता है और आत्मा के सम्यग्दर्शन गुण का नाश करता है ।

अप्रत्याख्यानीय कषाय अधिक-से-अधिक एक वर्ष तक चलता है और इससे आत्मा को विरति धर्म के परिणामों की प्राप्ति नहीं होती है । एक छोटे से भी पाप को छोड़कर देशविरति धर्म की आराधना करना

उसके लिए शक्य नहीं है । पाप को खराब मानते हुए भी उसे पापत्याग की इच्छा या परिणाम पैदा नहीं होता है ।

प्रत्याख्यानीय कषाय अधिक-से-अधिक चार माह तक रहता है । इस कषाय के उदय में सर्व पापों से विराम रूप चारित्रधर्म की आराधना करना शक्य नहीं है ।

संज्वलन कषाय अधिक-से-अधिक पंद्रह दिन तक रहता है । इस कषाय के उदय में आत्मा को वीतरागता की प्राप्ति नहीं होती है ।

इन कषायों का अंत करने के लिए ही प्रतिक्रमण की व्यवस्था है । हमारे कषाय अनंतानुबंधी न हों इसलिए वर्ष में एक बार संवत्सरी प्रतिक्रमण किया जाता है । हमारे कषाय अप्रत्याख्यानीय न हों इसलिए चार महीने में एक बार चौमासी प्रतिक्रमण किया जाता है । हमारे कषाय प्रत्याख्यानीय न हों इसलिए हर 15 दिनों में एक बार पक्खी प्रतिक्रमण किया जाता है और हमारे कषाय संज्वलन न बनें इसलिए प्रतिदिन संध्या समय देवसी और प्रातः काल में राइ प्रतिक्रमण किया जाता है ।

अनंतानुबंधी कषाय से आत्मा की नरक गति होती है, अप्रत्याख्यानीय कषाय से आत्मा की तिर्यंच गति होती है ।

प्रत्याख्यानीय कषाय से आत्मा की मनुष्य गति होती है और

संज्वलन कषाय से आत्मा की देव गति होती है । जब आत्मा संपूर्ण कषायों से मुक्त हो जाती है तब आत्मा सर्व कर्मों का क्षय करके वीतरागता प्राप्त करती है ।

आत्मा की वीतरागता में बाधक इन कषायों का अंत करने के लिए ही धर्म की छोटी-बड़ी क्रियाएँ हैं । क्षमापना धर्म का प्राण है । जिसके जीवन में क्षमापना का भाव नहीं है और आपस में किसी के प्रति वैर और मनमुटाव का भाव है, तो उसकी अन्य सभी आराधनाएँ शाश्वत सुख प्रदान करने में असमर्थ होती हैं ।

63

शत्रुंजय के ध्यान से आत्मा की उन्नति

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 09-11-2019**

आज का दिन महामंगलकारी दिन है । 10-10 करोड़ महामुनियों ने आज के दिन आत्मा की पूर्णता प्राप्त की थी । हम भी उन महामुनियों का ध्यान धरें...उस गिरिराज की भावपूर्वक स्पर्शना करें ।

इस पवित्र गिरिराज का ध्यान हमारी आत्मा को उन्नति के शिखर पर पहुँचाएगा । आज के दिन हजारों लोग गिरिराज की पवित्र भूमि की स्पर्शना एवं दादा के दर्शनकर महान् पुण्य का बंध करते हैं ।

गिरिराज से दूर-सुदूर क्षेत्र में रहे जो लोग गिरिराज के दर्शन नहीं कर पाते हैं, वे भी आज के दिन शत्रुंजय पट्ट के सामने चैत्यवंदन कर एवं 21 खमासमणे आदि देकर शत्रुंजय महातीर्थ की भाव से यात्रा करते हैं ।

पट्ट के दर्शन करते-करते हमें शत्रुंजयमय बन जाना है और आत्मा के शत्रुओं पर विजय पाने के लिए समुचित प्रयास करना है ।

द्रव्य व भाव से शत्रुंजय महातीर्थ की यात्रा करते-करते अपने अंतरंग शत्रुओं का जोर घटना चाहिए, तभी अपनी यह यात्रा सार्थक मानी जाएगी । आज के दिन की दूसरी महिमा भी जानने योग्य है । कार्तिक चौमासी के प्रतिक्रमण के बाद साधु-साध्वी के विहार खुले हो जाते हैं ।

आषाढ़ चौमासी के प्रतिक्रमण के बाद साधु-साध्वी के विहार बंद हो जाते हैं । चार मास तक साधु-साध्वी एक ही गाँव-नगर में स्थिरता करते हैं । हमारे लिए विहार जरूरी है ।

नदी का पानी सतत बहता रहता है, तो वह निर्मल रहता है तालाब का पानी एक ही जगह पड़ा रहता है, अतः वह गंदा हो जाता है ।

एक ही जगह रहने से राग-द्वेष की संभावनाएँ खूब-खूब बढ़ जाती हैं । एक जगह रहने से ज्यादा परिचय बढ़ने से लोग भक्तिवाले न हों तो द्वेष भाव की संभावना रहती है ।

राग-द्वेष ही आत्मा के भयंकर शत्रु हैं और उन शत्रुओं से बचने के लिए संयम जीवन की कठोरतम साधना है ।

भगवान की यह आज्ञा है–चातुर्मास को छोड़ साधु को एक जगह लम्बे समय तक स्थिर नहीं रहना चाहिए । अतः आज से हमारे विहार के द्वार खुल जाते हैं । बाहर के दुश्मनों से भी भीतर के दुश्मन राग-द्वेष ज्यादा खतरनाक हैं । उन दुश्मनों को जीतने के लिए ही जैन शासन में यह विहार की व्यवस्था है ।

आज के दिन पुण्यशाली आत्मा के घर पूज्य गुरु भगवन्त पधारते हैं । चतुर्विध संघ का आगमन होता है, वह घर भी पवित्र बनता है । प्रवचन-श्रवण आदि का पुण्य अवसर प्राप्त होता है । अपनी शक्ति व भावानुसार पुण्यशाली आत्मा को चतुर्विधसंघ की भक्ति का भी लाभ मिलता है ।

दुनिया दुरंगी

लोकनिंदा के भय से कभी भी सत्यवृत्ति
का त्याग न करें, क्योंकि दुनिया तो दुरंगी है,
आज जिसकी प्रशंसा करती है,
कल उसकी निंदा भी कर सकती है ।
आज जिसे फूलों का ताज पहिनाती है,
कल उसे काँटों का ताज भी पहिना सकती है ।
सारी दुनिया को कभी खुश किया नहीं
जा सकता है, अतः जो अच्छा है,
उसे अपना लो । जो बुरा है, उससे दूर रहो ।

64 पार्श्वनाथ प्रभु की आराधना

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 10-11-2019**

इस अवसर्पिणी काल में हुए चौबीस तीर्थंकरों में श्री पार्श्वनाथ भगवान की महिमा सर्वाधिक गायी जाती है। मात्र 290 वर्ष के काल तक ही चले उनके शासन की कालावधि सबसे कम होने पर भी आज पूरे भारत भर में सबसे अधिक जैन मंदिरों के मूलनायक परमात्मा पार्श्वनाथ भगवान हैं।

हजारों की संख्या में रहे जिनालयों में 108 तीर्थो में उनका विशेष प्रभाव है। महाराष्ट्र में अंतरिक्ष पार्श्वनाथ, आकाश में अधर हैं, तो कृष्ण महाराजा के द्वारा शंख बजाने से स्थापित शंखेश्वर पार्श्वनाथ पूरे विश्व में सर्वाधिक प्रभावशाली हैं। अनेक चमत्कारिक घटनाओं से एवं करोड़ों देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजित इस तीर्थ की महिमा सबसे न्यारी है।

आज कई लोगों के पास भौतिक समृद्धि है, किन्तु आत्म-शांति नहीं है। श्री पार्श्वनाथ भगवान की आराधना हमें जीवन में शांति, मरण में समाधि, परलोक में सद्गति एवं परम्परा से मुक्ति प्रदान करने की गारंटी देती है।

पारस मणि और पारस प्रभु में बड़ा अंतर है। पारस मणि तो लोहे को सोना ही बनाता है, पारसमणि नहीं बनाता, जब कि पार्श्वप्रभु भक्ति करने वाले को आत्म तुल्य बना देते हैं। मात्र चमत्कारों का नहीं, परन्तु परमात्मा के स्वभाव का आकर्षण होना चाहिए।

परमात्म-भक्ति तो वह लोहचुम्बक है, जो मुक्ति को भी खींचकर अपने समीप ले आती है। प्रभु भक्ति में पापनाश की अपूर्व शक्ति रही हुई है। इतिहास के स्वर्णिम पृष्ट इस बात के साक्षी हैं कि भूतकाल में अनेक आत्माओं ने प्रभु भक्ति द्वारा अपनी आत्मा पर लगे पाप मल को साफ किया है।

सर्वथा दोषरहित जिनेश्वर भगवन्त की जो त्रिसंध्या पूजा-भक्ति करता है वह जीव तीसरे भव में अथवा आठवे भव में अवश्य मोक्ष प्राप्त करता है । परमात्मा अनंत गुणों के भंडार हैं ।

देव देवेन्द्र चक्रवर्ती तथा अनेक पूर्वाचार्यों ने भक्ति भरे हृदय से प्रभु की खूब-खूब स्तवनाएँ की हैं, अतः हमारे लिए मुक्ति के उपाय रूप प्रभु की भक्ति है । मुक्ति की दूती के समान है ।

परमात्मा के पास इच्छापूर्ति की माँग करना व्यर्थ है, क्योंकि एक इच्छा पूरी होने पर मन में दूसरी इच्छा अवश्य पैदा होती है । अतः इच्छापूर्ति के स्थान पर इच्छामुक्ति की माँग करनी चाहिए । इच्छापूर्ति में क्षणिक सुख है, जबकि इच्छामुक्ति में शाश्वत सुख है । क्षणिक सुख को पाने में हम शाश्वत सुख को भूल चुके हैं ।

परम हितैषी परमात्मा हमें भी अपने समान बनाना चाहते हैं, परन्तु हम उनके जैसे नहीं बन सकते हैं, क्योंकि इसमें हमारी इच्छा का मेल नहीं होता है, अपने मन की इच्छा को गौण करके यदि हम परमात्मा की इच्छा का अनुसरण करें तो ही हमारा आत्मकल्याण हो सकता है ।

अहिंसा

पहले महाव्रत के ही विस्तार रुप
शेष चार महाव्रत हैं । झूठ, चोरी,
मैथुन और परिग्रह में भी प्रत्यक्ष और
परोक्ष रुप में हिंसा रही हुई है ।
अन्य महाव्रतों का पालन भी
अहिंसा धर्म की पुष्टि के लिए है ।
अतः किसी भी आराधना में
अहिंसा की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए ।

65

तप का उद्देश्य

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 11-11-2019**

1) देह-ममत्व-त्याग :– अनादिकाल से संसारी आत्मा को स्वदेह पर अत्यन्त ममत्व रहा हुआ है । स्वदेह पर रहे अत्यन्त राग के कारण ही आत्मा अनेकविध पापाचरण करती है ।

स्वदेह में ही आत्म-बुद्धि के कारण मिथ्यात्व से ग्रस्त आत्मा, देह की पुष्टि के लिए हिंसा-अहिंसा का विचार नहीं करती है, पुण्य पाप का विवेक नहीं करती है । मात्र स्वदेह में ही आसक्त दूसरे के सुख-दुःख का लेश भी विचार नहीं करती है । इस प्रकार अनेकविध पापों के आचरण के द्वारा आत्मा नये-नये कर्मों का अर्जन करती है और संसार के बंधनों में गिरकर अनेकविध दुःखों का अनुभव करती है ।

जब सद्गुरु के समागम से सन्मार्ग की प्राप्ति होती है और आत्म-स्वरूप का ज्ञान होता है, तब आत्मा मिथ्यात्व रोग से मुक्त बनती है । इस प्रकार आत्मा के शुद्धात्म स्वरूप के बोध से देह और आत्मा की भिन्नता का ज्ञान होता है । इस प्रकार देह से भिन्न आत्मा के बोध से आत्मा, देह की ममता के त्याग के लिए तप धर्म का आसेवन करती है । तप धर्म के निरन्तर अभ्यास से आत्मा, देह के भयंकर दुःखों में भी दृष्टा मात्र बनकर रहती है । इस प्रकार सम्यग् तप के आसेवन से आत्मा, देह के नाश में लेश भी दुःख का अनुभव नहीं करती है ।

देह ममता के त्याग बिना आत्म-सुख का संवेदन शक्य नहीं है और सम्यग् तप के आसेवन बिना देह की ममता का त्याग भी शक्य नहीं है ।

तप धर्म के निरन्तर अभ्यास से व्यक्ति धीरे-धीरे सहनशील बनता है और देह के दुःखों को हँसते-हँसते सहन करता है । तपधर्म के

सेवन का दूसरा मुख्य उद्देश्य है, इन्द्रियजयः पाँच इन्द्रियों में रसनेन्द्रिय सबसे अधिक बलवान है । रसनेन्द्रिय के पोषण से अन्य इन्द्रियों की पुष्टि होती है । रसनेन्द्रिय के पराधीन व्यक्ति अन्य इन्द्रियों का भी गुलाम बनता है । इन्द्रियाधीन पुरुष नानाविध दुःखों का अनुभव करता है ।

2) इन्द्रियजय के लिए तप का सेवन अनिवार्य है । विविध तपों के आसेवन द्वारा साधक भोजन के विविध रसों का त्याग करता है । इस प्रकार रस त्याग के क्रमशः अभ्यास से साधक धीरे-धीरे रसनेन्द्रिय को अपने वश में कर लेता है । आहार की आसक्ति के त्याग बिना इन्द्रियजय शक्य नहीं है और तप के निरन्तर आसेवन बिना आहार की आसक्ति का त्याग भी शक्य नहीं है । इस प्रकार इन्द्रिय-जय के लिए तप का आसेवन अनिवार्य हो जाता है ।

3) कषायजय :– क्रोध, मान, माया और लोभ ये चार कषाय आत्मा के अंतरंग शत्रु हैं । तप का मूलभूत उद्देश्य कषायों का जय है । कषायों के जय में ही तप की सार्थकता है । तप का सेवन कषायों की हानि के लिए ही है अर्थात् कषायों की हानि को लक्ष्य बिन्दु बनाकर ही तप का आसेवन करने का है । जिस क्रिया अथवा कष्ट में कषायों के क्षय का ध्येय नहीं है अथवा लेश भी कषायों की हानि नहीं है, वह क्रिया अथवा कष्ट, तप रुप नहीं कहला सकता है । वह मात्र कायकष्ट ही है । तप के बाह्य आडंबर के भीतर आहार की आसक्ति को ही पुष्ट करना और कषायों मे लेश भी कमी न करना यह तो तप का ढोंग ही है । ऐसे ढोंग ढकोसले से व्यक्ति अपने स्वार्थ को सिद्ध कर लेता है, परन्तु अपने वास्तविक परमार्थ को तो खो ही बैठता है ।

One should have courage while walking on the path of religion and not be disturbed by hardships.

66

आहार के तीन प्रकार

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 12-11-2019**

आयुर्वेद में भोजन के तीन प्रकार बतलाए हैं । सात्त्विक, राजसी, और तामसी ।

1. सात्त्विक आहार :– शुद्ध, प्राकृतिक, अहिंसक व अन्नाहार का समावेश सात्त्विक आहार में होता है ।

2. राजसी आहार :– विगइयों के स्वाद युक्त, गरिष्ठ, रसप्रद भोजन का समावेश राजसी आहार में होता है ।

3. तामसी आहार :– हिंसक व मादक भोजन का समावेश तामसी आहार में होता है ।

आयंबिल में राजसी व तामसी खुराक का सर्वथा त्याग और केवल सात्त्विक आहार का सेवन होने से किसी भी प्रकार की विकृति पैदा नहीं होती है और शुद्ध विचारों को उत्पन्न करने में सहायक बनता है ।

भोजन में जितनी अधिक स्निग्धता होती है उतनी ही अधिक आसक्ति बढ़ती है, जिसके फलस्वरुप चिकने कर्मों का बंध होता है, जबकि आयंबिल में रुक्ष भोजन होने से आसक्ति के अभाव से चिकने कर्मों का बंध नहीं होता है ।

आयंबिल के तप से जीवन में सहिष्णुता / सहन शीलता आती है । परिणामस्वरुप दु:ख को सहन करने की शक्ति पैदा होती है ।

जिनेश्वर परमात्मा प्ररूपित तप-धर्म-कर्म रूपी काष्ठ को भस्मीभूत करने में अग्नि समान है । अग्नि का एक कण लाखों मण काष्ठ के ढेर को भस्मीभूत करने में समर्थ है । अनादिकाल से आत्मा आहार, भय, परिग्रह और मैथुन संज्ञाओं के पराधीन बनी हुई है । उन संज्ञाओं पर विजय प्राप्त करने के लिए क्रमश: तप-भाव-दान व शील धर्म का पालन अनिवार्य है । तप से आहार संज्ञा, भाव से भय, दान से परिग्रह तया शील से मैथुन संज्ञा को जीता जा सकता है । चारों संज्ञाओं में आहार

संज्ञा अति बलवान है । प्रत्येक संसारी जीव विग्रह गति के सिवाय प्रत्येक समय आहार ग्रहण करता है । आहार यह आत्मा की विभाव दशा है, स्वभाव दशा नहीं । आत्मा का शुद्ध स्वभाव तो अणाहारी है ।

उस अणाहारी पद की प्राप्ति के लिए तप धर्म का सेवन अनिवार्य है । तप के बाह्य व अभ्यंतर दो भेद हैं । बाह्य तप का सेवन भी अभ्यंतर तप की प्रकर्षता पाने के लिए है । बाह्य तप अनशनादि छह प्रकार का है । बाह्य तप का सेवन इन्द्रियों को संयमित बनाने के लिए है । इन्द्रियाँ यदि अंकुश में हों तो आत्म साधना संभव है ।

इन्द्रियों में भी रसनेन्द्रिय अति चंचल है । उस पर विजय पाने के लिए सर्व श्रेष्ठ उपाय है–आयंबिल तप । विगइयों के आहार से इन्द्रियों पर संयम पाना कठिन है । आयंबिल तप एक ऐसा तप है कि जिसमें सभी विगइयों का त्याग होता है और साथ ही में इसका सेवन दीर्घकाल तक किया जा सकता है ।

प्राण धारण करने के लिए उपयोगी आहार आयंबिल में मिल जाने से इस तप का जीवन पर्यंत सेवन किया जा सकता है ।

आयंबिल तप का सेवन अनेक प्रकार के अनुष्ठानों में किया जाता है जैसे नवपद ओली की आराधना, निरन्तर अथवा एकान्तर पाँच सौ आयंबिल तप की आराधना, वर्धमान तप की आराधना इत्यादि ।

कैसी सोच !

दस वर्ष में एक वर्ष भी कमाई बिना जाता है तो व्यक्ति चिंतातुर हो जाता है, परंतु आश्चर्य है कि धर्म की कमाई के बिना वर्षों निकल जाय तो भी चिंता नहीं होती है । मानव की यह कैसी विचित्रता है ? उसे धर्म से भी धन ज्यादा कींमती लगता है ।

67 चातुर्मास की सफलता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 13-11-2019**

केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद प्रभु महावीर की पहली ही देशना निष्फल गई थी, वीर प्रभु उस दिन शासन की स्थापना नहीं कर सके परन्तु उसके बाद वे प्रतिदिन छह घंटे धर्मोपदेश देते थे। परन्तु उनके हर उपदेश से योग्य आत्मा को सन्मार्ग की दिशा अवश्य प्राप्त होती थी। उन्होंने 30 वर्षों में 64800 घंटे धर्मोपदेश दिया था, जिसके फल स्वरुप हजारों आत्माओं ने सर्वविरति, देशविरति धर्म को स्वीकार किया था।

प्रभुवीर के निर्वाण के बाद जिनशासन की धुरा को आचार्य भगवन्त वहन करते हैं। आचार्यों का यह कर्तव्य है कि वे प्रभु के बताए मार्ग को जन-जन तक पहुँचाएँ। हमारे ऊपर भी उपकारी गुरु भगवन्तों का असीम उपकार है–अतः आपको सदुपदेश का ज्ञान दान कर हमने हमारा कर्तव्य ही अदा किया है। उपदेश-श्रवण के बाद जीवन में स्वभाव में बदलाव आना चाहिए।

पानी को फ्रीज में रखते हैं, पानी बर्फ बन जाता है, परन्तु उसी बर्फ को बाहर निकालते हैं, तब वह पुनः पानी हो जाता है। यह तो सिर्फ Physical Change हुआ है।

दूध दही में बदल जाता है, उस दही में से मक्खन व घी बनता है। दूध में से दही बनना अर्थात् Chemical Change हुआ है, वह दही कभी भी पुनः दूध नहीं बनता है। चातुर्मास में प्रवचन-श्रवण के बाद जो परिवर्तन हुआ है, वह स्थायी होना चाहिए Temporary नहीं। चातुर्मास की सफलता धन के व्यय या बड़ी मात्रा में तपश्चर्या के आधार पर नहीं है, बल्कि हृदय-परिवर्तन के आधार पर है।

यदि इस चातुर्मास से आपके आचरण में, आपके स्वभाव में परिवर्तन हुआ है तो यह चातुर्मास आपके लिए सफल व सार्थक है। समय तो द्रुतगति से आगे बढ़ रहा है। समय को बीतते कहाँ देर लगती है। आपके मन के भीतर रहे काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि दोष दूर होने चाहिए और क्षमा-नम्रता-सरलता आदि गुणों का अर्जन होना चाहिए।

68 परमात्मा का उपकार सबसे बडा है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 14-11-2019**

जैन शासन में साधुओं के लिए नौ कल्पी विहार की आज्ञा है । आठ महीने विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए वर्षा के चातुर्मास में एक ही स्थान पर स्थिरता करनी है । इसके पीछे भी मुख्य उद्देश्य जीवदया का ही है । वर्षा होने पर वातावरण में अनेक छोटे-बडे जीवाणु पैदा हो जाते हैं, और विचरण करने से उन जीवों की हिंसा न हो इसलिए साधुओं को वर्षाकाल में एक स्थान में ही रहने की आज्ञा है ।

जीवदया सभी धर्म का मूल है । जहाँ पर जीवों के प्रति दया भाव न हो, वहाँ धर्म कैसे हो सकता है ? जीवदया के पालन से विशेष रुप से आठ लाभ होते हैं ।

जीवदया से अखंड ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है । जीवों को जीवन देने से हमें भी लम्बा जीवन और निरोगी काया की प्राप्ति होती है । साथ ही में पांडित्य, सुलक्ष्मी, सानुकूल कुटुंब, सुकुल में जन्म और बुद्धिमत्ता भी जीवदया से ही प्राप्त होती है ।

ऐसी भव्यतम जीवदया के मार्ग को जिसने दिखाया है ऐसे सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा का हम पर सबसे बड़ा उपकार है । परमात्मा के उपकार के सामने इस दुनिया में कोई भी अन्य उपकारी नहीं है । उनके दर्शन-वंदन और पूजन से आत्मा में रहे कर्म के बंधन शिथिल हो जाते हैं और आत्मा परम पुण्य का अर्जन करती है । परमात्मा के दर्शन से आत्मा में परमात्म तत्त्व को प्रकट करने का सामर्थ्य पैदा होता है ।

ऐसे परमात्मा की उदारता से भक्ति करनी चाहिए । उदारता से की गई परमात्मा की भक्ति मात्र हमारे जीवन में नहीं, बल्कि अन्य के जीवन में भी धर्मबीज का वपन करने मे समर्थ बनती है । भूतकाल में हो चुके अनेक पुण्य पुरुषों ने अपना सर्वस्व अर्पण कर अपने जीवन को सफल बनाया है ।

2000 वर्षों से पहले हो चुके श्री संप्रति महाराजा ने अपने जीवन काल में सवा लाख जिन मंदिर और सवा करोड़ जिन प्रतिमाओं का निर्माण कराया था। आज भी अनेक स्थानों के भूमि-खनन में उनकी निर्मित प्रतिमाएँ प्राप्त होती हैं। 900 वर्ष पहले हुए राजा कुमारपाल ने भी अनेक प्रकार से जैनधर्म की प्रभावना की। आबू के पर्वत पर विशालता एवं उदारता से जिनमंदिरों के निर्माण करके श्री वस्तुपाल और तेजपाल ने परमात्म-शासन की परम भक्ति की है।

भूतकाल में अनेक साधु महात्माओं ने भी अपने जीवन का खूब योगदान देकर धर्म की रक्षा, प्रभावना एवं आराधना की है। आज से 119 वर्ष पहले आज के ही दिन श्री शत्रुंजय महातीर्थ की पावन भूमि पर दीक्षित बने आचार्यश्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा. ने निकट भूतकाल में हमपर खूब उपकार किये हैं।

वह समय ऐसा था कि जब चारित्र धर्म की आराधना खूब कठिन थी। अपने पुत्र को यम ले जाए तो चल सकता है परंतु साधु को अपनी संतान देने के लिए लोग तैयार नहीं थे। 16 वर्ष में दीक्षित बने पूज्यश्री ने आजीवन सारे मिष्टान, सूकि मेवे और फलाहार का त्याग कर दिया एवं नित्य एकासने का नियम किया। इस त्याग के फल स्वरूप वे ब्रह्मचर्य सम्राट् बने थे।

श्रद्धा बल

प्रभु अनंत शक्तिशाली है, परंतु उस शक्ति का आभास तो हमें हमारी श्रद्धा के बल पर ही होता है। प्रभु के प्रति ज्यों-ज्यों अपना श्रद्धा-बल बढ़ता जाएगा, त्यों-त्यों प्रभु के विराट स्वरुप का हमें भास होता जाएगा और प्रभु की दिव्यकृपा हमें प्राप्त होती जाएगी। जो हमें उत्थान की ओर आगे बढ़ाएगी।

69

परमात्मा की आज्ञापालन ही उनकी सच्ची पूजा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 15-11-2019**

भूमि में बीज बोने से वृक्ष पैदा होता है, परंतु बीज बोने पर यदि फल पैदा न हो, तो बीज बोना व्यर्थ माना जाता है। वैसे ही मनुष्यजन्म को पाकर मनुष्यजन्म के योग्य गुणों की प्राप्ति न हो तो ऐसे मनुष्य-जन्म की प्राप्ति व्यर्थ मानी जाती है।

प्राप्त हुए मनुष्यजन्म को सफल बनाने के लिए जिनेश्वर परमात्मा की पूजा करनी चाहिए। जिनेश्वर परमात्मा के जन्म-समय असंख्य देवता मेरु पर्वत पर ले जाकर आठ प्रकार के आठ-आठ हजार कलशों में क्षीर समुद्र के पानी से परमात्मा की उत्तमोत्तम भक्ति करते हैं। नन्दनवन के फूलों से वे परमात्मा की भक्ति करते हैं।

देवताओं जैसी श्रेष्ठ द्रव्यपूजा तो हम नहीं कर सकते हैं, परंतु यथाशक्ति परमात्मा की द्रव्य पूजा हम कर सकते हैं।

मनुष्य-जन्म की सार्थकता मात्र द्रव्य-पूजा से नहीं है, उनकी आज्ञा पालन से हम परमात्मा की सर्वश्रेष्ठ भक्ति कर सकते हैं।

मनुष्य के लिए परमात्मा की सर्व श्रेष्ठ आज्ञा है। सर्वथा पाप मुक्त जीवन जीना। इसलिए ही परमात्मा ने सर्व प्रथम साधु धर्म बतलाया, जिसमें जीवननिर्वाह के लिए एक भी पापाचरण करने की आवश्यकता नहीं रहती है।

साधु जीवन के पाँच महाव्रतों में ब्रह्मचर्य व्रत सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। इस व्रत के पालन के लिए भोजन में विशेष मर्यादाएँ बताई हैं। भोजन का सीधा असर मन पर होता है। जैसा भोजन होता है, वैसा ही हमारा मन बनता है। हिंसक भोजन करने से व्यक्ति के मन में क्रोधादि कठोर भाव पैदा होते हैं।

जो तामसी भोजन करते हैं, उनके लिए छोटी-छोटी बातों में मार-पीट करना, हथियारों का उपयोग करना, बड़ी बात नहीं है । इस प्रकार के हिंसक तामसी भोजन से जीवन में बड़े पापाचरण होते हैं । राजसी भोजन भी खूब खतरनाक है । अधिक गरिष्ठ भोजन, मिष्टान्न, नमकीन एवं रसप्रद भोजन से मन में विकार-वासनाएँ पैदा होती हैं ।

वर्तमान में पैदा होने वाली अधिकतर बीमारियाँ स्वादिष्ट भोजन के कारण ही हैं । भोजन में हम क्या लेते हैं, यह तो महत्त्वपूर्ण है ही, भोजन किसके हाथों से लेते हैं, वह भी महत्त्वपूर्ण है ।

यदि सात्त्विक, अहिंसक और सादा भोजन भी माता आदि परिवार जनों के हाथों से पका और परोसा हुआ लेते हैं तो वह भोजन जीवन में पवित्रता और निर्दोषता को पैदा कर सकता है ।

दिनभर हम मंदिर में नहीं रह सकते हैं, परंतु उनकी आज्ञा के पालन से हम हमेशा उनकी भाव पूजा कर सकते हैं ।

परमात्मा की आज्ञा का पालन न सिर्फ धर्मस्थानों में करना है, बल्कि जीवन में कदम-कदम पर उनकी आज्ञाओं का स्मरण व पालन कर हम सदा परमात्मा के पास और साथ रह सकते हैं ।

समाधि की प्राप्ति

धन के अभाव में जीवन में आनेवाला
दुःख तो नाम मात्र का है,
जबकि जीवन में असमाधि से
आनेवाला दुःख बहुत ही खतरनाक है ।
धन की प्राप्ति पुण्य के अधीन है जबकि
समाधि की प्राप्ति अपने पुरुषार्थ
के अधीन है ।

70

भाव धर्म की महत्ता

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 16-11-2019**

दान-शील और तप के अभाव में भी भाव धर्म मोक्ष का कारण बन सकता है परन्तु भाव के अभाव में दान आदि धर्म निष्फल कहे गए हैं ।

सिद्ध रस के संयोग से लोहा सोना बन जाता है । नमक के प्रयोग से भोजन स्वादिष्ट बन जाता है, उसी प्रकार भाव के संयोग से धर्म मोक्ष रूपी लक्ष्मी प्रदान करने वाला होता है । संसार के भौतिक सुखों का त्याग किए बिना, मुद्रिका रहित अपनी अंगुली को देखकर अनित्य भावना का विचार करते हुए भरत महाराजा को आरिसा भवन में केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी ।

भावपूर्वक किया गया धर्म जीवात्मा को इसलोक ओर परलोक के सुख के लाभ के लिए होता है ।

जीव बिना शरीर (कलेवर) का कोई मूल्य नहीं ।

सुगंध बिना फूल की कोई कीमत नहीं ।

जड़ बिना वृक्ष का अस्तित्व नहीं, बस, इसी प्रकार भाव बिना धर्म नहीं । दान आदि क्रियाएँ अपने वास्तविक फल को देने में तभी समर्थ बनती हैं, जब उनके साथ भाव जुड़ा हो ।

भाव रहित चाहे कितनी ही क्रियाएँ की जाँय, वे क्रियाएँ मोक्ष नहीं दे सकती है ।

दान भी दान धर्म तभी बनता है, जब उसके साथ भाव जुड़ा हुआ हो ।

शील और तप भी तभी धर्म बनते हैं, जब उनके साथ भाव जुड़ा हो ।

जिनेश्वर भगवंतों ने धन की आसक्ति तोड़ने के लिए दान धर्म बतलाया है, अतः दान देते समय दाता के दिल में यह भाव हो कि इस

दान के प्रभाव से मेरी अन्तरात्मा में रही धन की मूर्च्छा दूर हो तभी वह दान, दान धर्म कहलाता है । नाम, यश, कीर्ति आदि की इच्छा से या परलोक में देव देवेन्द्र या चक्रवर्ती पद को पाने की लालसा से धार्मिक भी अनुष्ठान किया जाय तो वह अनुष्ठान क्रमशः विष और गरल अनुष्ठान बन जाता है, अतः प्रत्येक धर्मानुष्ठान के पीछे मुक्ति की तीव्र अभिलाषा का भाव अवश्य होना चाहिए ।

देह की अनित्यता का विचार करते-करते भरत महाराजा इतने भाव-विभोर हो गए कि (आरिसा भवन) में ही उन्हें केवलज्ञान हो गया था ।

अस्ताचल की ओर आगे बढ़ रहे सूर्य को देखकर पवनपुत्र हनुमान संसार से विरक्त हो गए थे ।

'जो जल रहा है, वह मेरा नहीं और जो मेरा है, वह कभी जलने वाला नहीं ।' इस प्रकार अन्यत्व भावना में लयलीन बने गजसुकुमाल मुनि साधना के शिखर पर पहुँच गए और सदा के लिए बन्धन-मुक्त हो गए ।

'मैं अकेला, अकेला आया हूँ और अकेला ही जाने वाला हूँ', इस एकत्व भावना में मग्न बने अनाथी मुनि ने युवावस्था में संसार का त्याग कर दिया और संसार के बंधन में से मुक्त बन गए ।

देह की अशुचि / दुर्गन्धता का दर्शन कराकर राजकुमारी मल्लिकुमारी ने स्वयं पर मुग्ध छह राजकुमारों को वैराग्य-भावना से रंजित कर दिया था ।

Anger and ego is path of hell,
while calmness and quiteness is
path of eternal happiness.

71 मानवता के दीप जलाएँ

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 17-11-2019**

मानव शब्द के तीनों अक्षर हमें सुंदर प्रेरणा देते है ।

मानव शब्द का पहला अक्षर हैं–**'मा' ।**

मा शब्द दया का प्रतीक है । मा के दिल में जैसा वात्सल्य अपनी संतान के प्रति होता हैं, वैसा प्रेम भाव सभी जीवों के प्रति होना चाहिए ।

दया धर्म का मूल है । जिनेन्द्र के सिद्धांत में अन्य सभी अनुष्ठान भी दया के लिए ही कहे हैं । दयालु व्यक्ति ही सद्धर्म के लिए योग्य है ।

1) दया अर्थात् हृदय की कोमलता । दया के दो स्वरूप हैं–

1) Negative निषेधात्मक और 2) Positive विधेयात्मक ।

किसी जीव की हिंसा न करना, किसी को दुःख नहीं पहुँचाना, किसी को दुःख हो ऐसी प्रवृत्ति नहीं करना, यह दया का निषेधात्मक स्वरूप है ।

किसी दुःखी जीव को देखकर हृदय द्रवित हो जाना और अपनी शक्ति अनुसार उसके दुःख को दूर करने का प्रयास करना यह दया का विधेयात्मक (Positive) स्वरुप है । कोई व्यक्ति स्वयं किसी जीव की हिंसा न करे, किंतु किसी की हिंसा होती हो, कोई दुःखी हो, उसकी उपेक्षा करे तो वह पूर्ण दया नहीं है । दयालु व्यक्ति स्वयं हिंसा नहीं करता है और साथ में हो रही हिंसा को भी रोकने का यथाशक्य प्रयास करता है ।

2) न अर्थात् नम्रता । नम्रता गुण सभी गुणों की आधारशिला है, बुनियादी नींव है । नींव के बिना इमारत टिक नहीं सकती । इमारत की मजबूती नींव के आधार पर है, उसी प्रकार जीवन में नम्रता गुण जितना अधिक विकसित होता है, उतने ही अंश में सच्चा आत्मविकास होता है । विनय के अभाव में आत्म साधना के पथ पर एक कदम बढ़ाना भी शक्य नहीं है ।

बाह्य नम्रता के लिए हृदय में बहुमान भाव होना बहुत जरुरी है । हृदय में बहुमान, सम्मान, पूज्य भाव न हो तो वह विनय टिक नहीं सकेगा । गुरु आदि के प्रति अपने हृदय में पूज्य भाव को बनाए रखने के लिए हृदय की कोमलता और गुणदृष्टि आवश्यक है ।

जिसके हृदय में कठोरता है, वह व्यक्ति कभी भी नम्रता का भंग कर सकता है ।

जिसके जीवन में गुणदृष्टि रही हुई है, वह व्यक्ति अपने नम्र व्यवहार को बनाए रख सकता है, परन्तु जीवन में दोषदृष्टि होगी तो वह व्यक्ति अविनीत हुए बिना नहीं रहेगा ।

नम्रता गुण को जीवन में आत्मसात् करने के लिए भाषा पर नियंत्रण जरूरी है । जबान पर लगाम न हो तो वह व्यक्ति कभी भी वातावरण को बिगाड़ सकता है । **'अहंकार'** व्यक्ति को नम्र बनने नहीं देता है । अहंकारी कभी विनय नहीं कर सकता । अहंकारी व्यक्ति अपने उपकारी व गुरुजनों की भी उपेक्षा कर देता है ।

व अर्थात् विवेक । जो वचन हितकारी, प्रमाणोपेत, प्रिय, स्निग्ध, मधुर व परिणाम में फायदेकारक हैं वे ही प्रशंसनीय गिने जाते हैं ।

मनुष्य के वचन वरदान स्वरूप भी बन सकते हैं और अभिशाप स्वरूप भी, अतः बोलते समय खूब सोचकर बोलें । इस जगत् में सबसे बड़ा उपकार भी वाणी से होता हैं और सबसे बड़ा अपकार भी वाणी से होता है, अतः खूब विचारकर बोलें ।

अन्य इन्द्रियों से जो लाभ या नुकसान नहीं होता है, वह जीभ से होता है, अतः जो हितकारी हो, वह ही बोलें ।

इस जुबान से निकले दो शब्द किसी शांत घर में आग भी लगा सकते हैं और उसी जुबान से निकले दो शब्द घर में पैदा हुई आग को शांत भी कर सकते हैं ।

वृद्धावस्था में सभी इन्द्रियाँ कमजोर हो जाती हैं, परन्तु जीभ तो वैसी की वैसी रहती है, अतः जीभ का दुरुपयोग न करें । इस जीभ से अमृत समान मीठे वचन भी बोल सकते हैं और विषके समान कड़वे शब्द भी ।

72 भगवान महावीर का दीक्षा कल्याणक

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 18-11-2019**

कल्याणक बगीचे की तरह होते हैं–जिस प्रकार बगीचे में अनेक वृक्ष होते हैं । उसी प्रकार महावीर प्रभु के कल्याणक बगीचे तुल्य हैं । एक बगीचे में अनेक वृक्षों से अनेक व्यक्ति सुगंध व फल आदि प्राप्त कर सकते हैं, उसी प्रकार वीर प्रभु का आलंबन लेकर अनेक आत्माएँ शील और सदाचार की सुगंध प्राप्त कर सकती हैं । प्रभु का आलंबन लेकर अनेक आत्माएँ अपने भव से निस्तार पा सकती हैं ।

श्रुत की गंगा के लिए वीर प्रभु हिमालय पर्वत समान है । गंगा नदी का उद्‌गम स्थल हिमालय पर्वत है । हिमालय पर्वत पर रही गंगोत्री से गंगा नदी निकलती है । उसी प्रकार वर्तमान में विद्यमान जो भी श्रुत है, उस सभी श्रुत का उद्‌गम स्थल महावीर प्रभु हैं ।

वीर प्रभु के मुख से त्रिपदी का श्रवणकर बीजबुद्धि के निधान श्री गणधर भगवन्त समस्त द्वादशांगी की रचना करते हैं । वर्णमातृका के संयोग से जो भी श्रुतज्ञान पैदा होता है, उस श्रुतज्ञान का मूल श्री महावीर प्रभु हैं । वीर प्रभु स्वयं केवलज्ञानी होते हुए भी जगत् के जीवों को जब उपदेश देते हैं, तब द्रव्यश्रुत का आलंबन लेते हैं ।

जिस प्रकार गंगानदी विशाल क्षेत्र में बहकर अनेक व्यक्तियों की प्यास बुझाती है, अनेक की गर्मी दूर करती है और उन्हें शीतलता प्रदान करती है, उसी प्रकार प्रभु के श्रीमुख से निकली यह श्रुतगंगा 21 हजार वर्ष तक बहनेवाली है । इतना ही नहीं, इस श्रुतगंगा की स्पर्शना कर हजारों आत्माएँ अपने पाप मल का प्रक्षालन करेगी हैं । इस श्रुतगंगा में स्नान कर अनेक आत्माएँ पावन बन जाएगी ।

जिस प्रकार एक जलता हुआ दीपक हजारों दीपकों को प्रकाशित करता है, उसी प्रकार एक आत्मा को प्राप्त श्रुतज्ञान अनेक आत्माओं में

ज्ञान का दीप जला देता है और उन आत्माओं में रहे अज्ञान अंधकार को सदा के लिए दूर कर देता है ।

पूर्व दिशा में सूर्य का उदय होता है और सरोवर में उगे कमल विकसित होने लगते हैं । कमल और सूर्य का घनिष्ट सम्बन्ध है । सूर्य के विकास में कमल का विकास है और सूर्य के ढलने में कमल का पतन है ।

जगत् के जीवों के विकास के लिए महावीर प्रभु विकसित सूर्य के समान हैं ।

कमल का जीवन सूर्य के आधार पर है । इसी प्रकार सांसारिक जीवों का आत्म-विकास तीर्थंकर परमात्मा को आभारी है ।

भरत क्षेत्र में एक अवसर्पिणी काल में 9 कोटाकोटि सागरोपम और एक उत्सर्पिणी काल में 9 कोटा कोटि सागरोपम तक तीर्थंकरों का अभाव रहता है । अवसर्पिणी काल में तीसरे आरे के अंत में व चौथे आरे में तीर्थंकर पैदा होते हैं और उत्सर्पिणी काल में तीसरे आरे में तीर्थंकर पैदा होते हैं ।

पुण्य पाप

अपने पुण्य-पाप के उदय में किसी व्यक्ति के प्रति राग या द्वेष नहीं करना चाहिए ।
कोई व्यक्ति अनुकूल है तो समझना चाहिए कि पुण्य का उदय है और कोई व्यक्ति प्रतिकूल है तो समझना चाहिए कि अपने पाप का उदय है ।
पुण्य-पाप का उदय भी सदा स्थायी नहीं है ।
अतः पुण्य से प्राप्त सामग्री का गर्व न करें और पाप के उदय में दीन न बनें ।

73 आधुनिक जीवन-शैली धर्म में बाधक है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 19-11-2019**

आधुनिक जीवन शैली धर्म में सहायक नहीं, बल्कि बाधक है । आज व्यक्ति खूब स्वार्थी हो गया है, इसलिए उसके जीवन में खूब परिवर्तन आ चुका है ।

पहले लोगों के घर Ground में होते थे, जिससे घर में किसी के लिए भी आना-जाना सुगम होता था । लोगों के घर के दरवाजे हमेशा खुले रहते थे । कोई भी साधु-संत, गरीब, पशु आदि भोजन ग्रहण करने या भिक्षा लेने आ सकते थे ।

सद्गृहस्थ के लिए कर्त्तव्य है कि प्रतिदिन भोजन के पहले अवश्य दान देना चाहिए । दिया हुआ दान अगले जन्म में धर्म की सामग्री प्राप्त कराने में समर्थ बनता है ।

परंतु आज लोगों का रहन-सहन पूर्ण रूप से बदल गया है । बड़ी बिल्डिंगों में रहनेवाले लोगों के घरों में कोई भिक्षुक, साधु-संत आदि भी भिक्षा लेने कैसे आएंगें ? उसमें भी लोगों के घर के दरवाजे प्रवेश होते ही तुरंत बंद हो जाते हैं । इन साधनों में मशगूल व्यक्ति धर्म से खूब दूर चला जाता है ।

आज व्यक्ति रात में देर तक जग कर दिन में सोता है, जबकि जीवन में स्वस्थ रहने के लिए भी प्रकृति के नियमों के साथ चलना चाहिए । दिन का समय श्रम के लिए और रात का समय आराम के लिए है । दिनभर के श्रम को दूर करने के लिए रात्रि के दूसरे और तीसरे प्रहर की निद्रा पर्याप्त है ।

यदि इस तरह की जीवन शैली बना ली जाय, तो आरोग्य की प्राप्ति हो सकती है और धर्माराधना भी अच्छी तरह से हो सकती है । साधु जीवन में विशेष रुप से पाँच प्रहर स्वाध्याय, रात्रि के दो प्रहर निद्रा और दिन का एक प्रहर आहार-विहार-निहार की आज्ञा है । इस तरह साधु-जीवन में प्रतिदिन 15 घंटे स्वाध्याय की आज्ञा की है ।

श्रावक जीवन में भी अधिक-से-अधिक समय स्वाध्याय करना चाहिए । जीवन में ज्ञान की प्राप्ति एवं प्राप्त ज्ञान के संरक्षण के लिए स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए ।

ज्ञान पाने के लिए जीवन में गुरु के प्रति विनय और नम्रता का खूब जरूरी है । जिसे पाना है, उसे हमेशा नम्र बनना चाहिए । जैसे कुएं में डाले घड़े या बाल्टी में पानी तभी भर सकता है, जब वह नीचे झुके, सीधी बाल्टी में पानी कभी भरा नहीं जा सकता है ।

वैसे ही ज्ञान पाने के लिए शिष्य गुरु के प्रति विनय भाव रखे तो ही उसे ज्ञान प्राप्त हो सकता है ।

ज्ञान पाने के बाद भी जीवन में नम्र भाव खूब जरूरी है । गुरु के प्रति विनय और नम्रता गुण के द्वारा शिष्य वह सिद्धि प्राप्त कर सकता है, जो गुरु के पास भी न हो ।

श्रावक को साधु की तरह स्वाध्याय के द्वारा ज्ञानवृद्धि में विशेष प्रयत्न करना चाहिए । गुरु भगवंतों के प्रवचन-श्रवण से भी स्वाध्याय कर सकते हैं । यदि गुरु भगवंतों का योग न हो, तो प्रतिदिन कम-से-कम एक घंटे तक धार्मिक पुस्तकों के वाचन से स्वाध्याय किया जा सकता है ।

सद्‌गुरु

शरीर की चिकित्सा करानी है तो
वहाँ डॉक्टर की सलाह जरुरी है,
उसी प्रकार आत्मा की चिकित्सा करानी है ।
तो उसके लिए सद्‌गुरु की ही सलाह जरुरी है ।
उनके मार्गदर्शन एवं सान्निध्य में ही आत्मा,
कर्म रोगों से मुक्त बनने का प्रयत्न कर सकती है ।
सद्‌गुरु की उपेक्षा में अपनी आत्मा की ही उपेक्षा है ।

74

आत्मा के रोगों से भी हमें शरीर के रोगों की खूब चिन्ता है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 20-11-2019**

जगत् में रही सभी आत्माओं पर दो प्रकार के रोग लगे हैं । शरीर के रोग द्रव्य रोग और आत्मा के रोग भाव रोग कहलाते हैं। शरीर के रोगों की चिकित्सा को द्रव्य चिकित्सा, और आत्मा के रोगों की चिकित्सा को भाव चिकित्सा कहते है ।

शरीर की थोड़ी भी पीड़ा, वेदना हम सहन करने को तैयार नहीं होते । शरीर पर आक्रमण करने वाले रोगों की चिकित्सा करने हेतु हम सदैव तत्पर रहते हैं । रात में भी हृदय की बीमारी का पता चल जाए, तो व्यक्ति तुरन्त ही चिकित्साल्य में जाकर उस रोग का निदान करता है ।

शरीर के बाह्य रोग तो हमें एक ही जीवन में प्राणघातक बन सकते हैं, जबकि आत्मा के अभ्यंतर रोग हमें जन्मो-जन्म तक असह्य वेदना देकर प्राणघातक बनते हैं । फिर भी विचित्रता है कि हमें आत्मा के रोगों से भी शरीर के रोगों की खूब चिंता है ।

भाव रोग रुप आठ प्रकार के कर्मों के कारण जीवात्मा को चारों गतियों में भिन्न-भिन्न शरीर धारण करने पडते हैं । शरीर रोगों का घर है । शरीर के प्रत्येक रोम में सत्तागत पौने दो रोग हैं । शरीर में छह करोड़ से अधिक रोगों की शक्यता रही हुई है । कौन-सा रोग कब पीड़ा देगा, हम जान नहीं सकते हैं ।

एक छोटा-सा भी रोग हमें विह्वल बना देता है । शरीर की सारी स्वस्थता टूट जाती है । शरीर की थोड़ी भी वेदना हम सहन करने के लिए तैयार नहीं होते हैं । मृत्यु एक ऐसी बीमारी है, जो शरीर का ही अंत ला देती है । मरते समय पूरे शरीर में व्याप्त आत्मा जब बाहर

निकलती है, तब पूरे शरीर में गर्मागर्म सुइयों के चुभने जितनी वेदना होती है ।

छोटी-सी वेदना में भी हम दुःखी हो जाते हैं । तब मरण समय की वेदना हम कैसे सहन कर सकेंगे । सुख और दुःख दोनों प्रसंगों में हमारा मन विचलित हो जाता है । दुःख में समता रखना कठिन है तो सुख में विरक्ति और ज्यादा कठिन है ।

जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्य है । परंतु मृत्यु सहज और समाधि भाव में होनी जरूरी है । मृत्यु के आधार पर ही हमारे पुनर्जन्म की शुभ-अशुभ गति का निर्णय होता है ।

परमात्मा से माँगने का हमारा स्वभाव है । हम परमात्मा के पास घर, बंगला-गाड़ी, धन-दौलत आदि पाने के लिए प्रार्थना करते हैं । परंतु ये सभी चीजें एक भव तक रहनेवाली हैं इसलिए परमात्मा के पास ऐसी तुच्छ वस्तु माँगने के बजाय आत्मिक लाभ हो ऐसी विशिष्ट प्रार्थना करनी चाहिए ।

गुजरात के महामंत्रीश्वर श्री वस्तुपाल ने परमात्मा के पास प्रार्थना करते हुए मांगते है कि हे प्रभु ! आपकी कृपा से मुझे समाधि सहित सहज मृत्यु की प्राप्ति हो, जीवन में कभी भी दीन भाव प्राप्त न हो । मन हमेशा परमात्मा के स्मरण में लीन बना रहे, जिससे जीवन और मरण दोनों सफल हो जाएँ ।

शत्रुंजय प्रभाव

जो पशु-पंखी भी इस
गिरिराज की स्पर्शना करते हैं वे भी
तीसरे भव में मोक्ष प्राप्त करते है ।
ठीक ही कहा है- 'पशु पंखी पण इण गिरी आवे
भव त्रीजे ते मोक्ष ज जावे ।'

75 जो धर्म की साधना करे, वह समझदार

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 21-11-2019**

अंधा व्यक्ति कहीं नीचे गिर जाता है तो लोग उसे दोषी नहीं मानते बल्कि उसकी दया खाते हैं। परंतु देखने वाला व्यक्ति अपनी नजर ऊपर करके चले और खड्डे में गिर जाय, तो लोग उसे मूर्ख कहते हैं।

अज्ञानी की गल्ती क्षन्तव्य मानी जाती है, परंतु ज्ञानी होकर भी जो गल्ती करता है वह दोषी माना जाता है।

जैसे व्यक्ति दिनभर दुकान बंद रखकर रात भर दुकान खुली रखे, तो उसे कभी कमाई नहीं होती। विद्यार्थी भी परीक्षा के समय पढ़ाई न करे, तो वह उत्तीर्ण नहीं होता है।

उसी प्रकार जो व्यक्ति देवों के लिए भी दुर्लभ ऐसे मनुष्यजन्म को प्राप्त कर मात्र भोग-सुखों में अपना जीवन व्यतीत कर दे तो उसको प्राप्त मनुष्य-जन्म निष्फल चला जाता है।

देवों की अपेक्षा मनुष्य का शरीर अत्यंत हीन है। पूरे शरीर में अशुचि भरी हुई है ! फिर भी यह मनुष्य-जन्म धर्म करने के लिए मिला है।

मनुष्य-जन्म, पंचेन्द्रिय परिपूर्णता, दीर्घ आयुष्य, सद्धर्म का योग आदि की प्राप्ति खूब कठिन है। हर व्यक्ति अपनी बैंक में जमा रकम को जान सकता है, किसी अन्य को उधार दी रकम जान सकता है, परंतु कोई भी व्यक्ति अपने शेष आयुष्य को नहीं जान सकता है।

मनुष्य जीवन अत्यंत ही क्षणभंगुर है। अनेक प्रकार के उपघातों से चंचल यह जीवन कब पूरा हो जाएगा पता नहीं, ऐसे मनुष्य के अल्पकालीन आयुष्य को पाकर सद्धर्म की आराधना करने में ही सच्ची समझदारी है।

मरीज व्यक्ति डॉक्टर को जीवनदाता मानता है । बाय-पास ऑपरेशन से डॉक्टर हमें 5-10 वर्षों की जिंदगी देता है परंतु यह सत्य नहीं है । क्योंकि डॉक्टर भी ऑपरेशन थियेटर में मरीज को ले जाने के पहले मरीज के परिवार जनों से हस्ताक्षर लेकर अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाता है ।

जीवन तो क्या एक छोटी वस्तु की प्राप्ति भी पुण्य के अभाव में प्राप्त नहीं होती है । पुण्य हो तो दूर रही वस्तु भी सामने से चली आती है और पुण्य पूरा होने पर हाथ में लिया कवल भी मुँह में नहीं ले सकते हैं ।

संपत्ति की प्राप्ति में सुख मानना, सबसे बड़ा झूठ है । फिर भी अधिकांश लोग पैसों के पीछे जीवन गँवा देते हैं । परंतु ऐसा कोई नियम नहीं है कि पैसे होंगे तो रोगों का हमला या दुर्घटना नहीं होगी ।

सच्ची समझ जीवन में किसी भी समय आ सकती है । जो जीवन बीत चुका है, उसे सुधारना शक्य नहीं है, परंतु जो जीवन शेष बचा है, उसे सुधारना हमारे हाथ में है ।

मनुष्य-जीवन की सफलता मौज-शौक-ऐश्वर्य-आराम आदि में नहीं है, इसकी सफलता तो परलोक और परमलोक को सुधारने में सक्षम ऐसी धर्म आराधना में है । पैसों की कमाई सच्ची कमाई नहीं है । सच्ची कमाई तो वह है, जो आत्मा के साथ अगले जन्म में चल सके ।

मन

गोदाम में सब कुछ भरा जाता है, परंतु तिजोरी में तो अमूल्य वस्तुएँ ही रखी जाती हैं । जरा सोचें, अपना मन गोदाम जैसा है या तिजोरी जैसा ? हल्के व तुच्छ विचारों का यदि मन में संग्रह होता है तो अपना मन गोदाम ही कहलाएगा । अपने मन को गोदाम बनाने की कोशिश न करें ।

76 आँख खुलते ही नवकार महामंत्र का स्मरण करना चाहिए

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 22-11-2019**

प्रातःकाल में जब हमारी आँख खुलती है, तब सबसे पहले, हमें हमारे परमोपकारी देव और गुरु के स्मरण रुप नवकार महामंत्र का जाप करना चाहिए । जीवन के हर कार्य में हमें सबसे पहले नवकार महामंत्र गिनना चाहिए ।

नवकार महामंत्र अति प्रभावशाली है । अन्य सभी-मंत्र हैं, जबकि नवकार-महामंत्र है । इसलिए नवकार महामंत्र का स्मरण अति मंगलकारी है ।

नवकार महामंत्र में नमन की प्रधानता है, इसलिए इसकी शुरुआत में **'नमो'** पद है । हर किसी को नमन नहीं करना है परंतु जो नमस्कार के पात्र हों, उन्हें ही नमस्कार करना है । इस दुनिया में नगर सेवक, महापौर, विधायक, मंत्री, महामंत्री, प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति के पद को बड़ा माना जाता है, इसके अतिरिक्त राजा-चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव, देवता, इन्द्र आदि पद भी बड़े माने जाते हैं ।

परंतु इन पदों की प्राप्ति पुण्य से होती है और पुण्य की पूर्णाहुति से व्यक्ति इन पदों से पदभ्रष्ट हो जाता है । अतः इनको किया गया नमस्कार आत्मा को लाभदायी नहीं है ।

नमस्कार करने योग्य अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु पद रूप पंच परमेष्ठी हैं । इनमें अरिहंत और सिद्ध, संसार के परिभ्रमण से मुक्त हैं इसलिए वे हमारे आराध्य देव होने चाहिए । एवं आचार्य, उपाध्याय और साधु, संसार के परिभ्रमण से मुक्ति के उपाय में तत्पर हैं, साथ ही हमारी आत्मा को उपदेश के माध्यम से मुक्ति के उपाय में जोड़ने वाले होने से ये हमारे आराध्य गुरु होने चाहिए । श्री नवकार महामंत्र में इन पंच परमेष्ठी को नमस्कार, किया जाता है ।

नमस्कार करने योग्य इन पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने से हमारी आत्मा भी अनादि के कर्म के संयोग से मुक्ति पा सकती है ।

संबंध दो प्रकार के होते हैं । जो स्वाभाविक संबंध है, उसे कभी तोड़ा नहीं जा सकता, जैसे घी में चिकनाहट, सोने में पीलापन, दूध से उसकी सफेदी कभी अलग नहीं कर सकते हैं ।

जो सांयोगिक संबंध है, उसे प्रयत्नपूर्वक अवश्य ही तोड़ा जा सकता है । जैसे दो व्यक्तियों का संयोग हुआ तो एक दिन अवश्य वियोग में बदलता है । वैसे ही आत्मा के भीतर कर्मों का संयोग है, वह भी संयोगिक संबंध है, जिसे प्रयत्नपूर्वक जरूर तोड़ा जा सकता है ।

अनादिकालीन कर्म के संयोग को तोड़ने के लिए चारित्र का मार्ग है । चारित्र के स्वीकार से आत्मा भी इन नमस्करणीय पंच परमेष्ठी में स्थान प्राप्त कर सकती है ।

इन पंच परमेष्ठी के गुणगान करने से, उन्हें नमस्कार करने से एवं उनकी आराधना से आत्मा उनके जैसी शुद्ध-बुद्ध बन जाती है ।

वर्तमान में अरिहंत परमात्मा हमसे खूब दूर हैं, फिर भी उनके नामस्मरण से हम परमात्मा को खूब पास में ला सकते हैं । परमात्मा का अनुग्रह हमें प्राप्त हो, इसलिए विशेष रूप से बार-बार नवकार महामंत्र का स्मरण करना चाहिए ।

पुरुषार्थ

क्रोध स्व-पर उभय का घात करनेवाला है ।
फिर भी आश्चर्य है कि उसे छोड़ने के लिए
हमारी तैयारी नहीं है । सम्यग्ज्ञान स्व-पर को
प्रकाश देनेवाला है, फिर भी आश्चर्य है कि उसकी
प्राप्ति के लिए प्रयत्न नहीं है ।
और जो क्रोध अपने बोध को ही खा जाता है,
उसके लिए हम सतत प्रयत्नशील हैं ।

77

समस्त श्रुतज्ञान का सार है- नवकार महामंत्र

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 23-11-2019**

नवकार महामंत्र मात्र 68 अक्षर प्रमाण है । नौ पद और आठ संपदामय छोटे से नवकार महामंत्र में समस्त श्रुतज्ञान अर्थात् चौदह पूर्व के ज्ञान का समावेश है ।

जैसे दूध का सार मलाई है, फूल का सार उसकी सुगंध है वैसे ही समस्त श्रुतज्ञान का सार नवकार महामंत्र है ।

जैसे एक छोटे से चैक में लाखों-करोडों रुपयों की शक्ति है अथवा एक छोटी-सी दवाई में पूरे शरीर में रहे रोग को शमन करने की ताकात है, वैसे ही इस 68 अक्षर वाले नवकार महामंत्र में चौदह पूर्व का ज्ञान समाया हुआ है ।

चौदह पूर्व के ज्ञाता श्रुतकेवली महात्मा भी अपने जीवन के अंत समय नवकार महामंत्र की ध्यान साधना में मग्न बनने का प्रयत्न करते हैं । जीवन में चाहे जितना ज्ञान प्राप्त किया हो वृद्धावस्था, रोग और मृत्यु के उपघात से सारा ज्ञान भुला दिया जाता है ।

जीवन की बाल्यावस्था में आहार की आसक्ति रहती है । युवावस्था में धनार्जन एवं मौज-शौक में मन लीन बनता है और वृद्धावस्था में व्यक्ति को मरण का भय हैरान करता है ।

जीवात्मा को सबसे अधिक स्नेह शरीर के साथ है । इसलिए उसे मरण का भय विह्वल करता है । मरण से सारे संबंध क्षण भर में समाप्त हो जाते हैं ।

शरीर के प्रति ममत्व के कारण व्यक्ति स्वादिष्ट भोजन, प्रिय वस्तु, धन-वैभव-संपत्ति भी छोड़ने के लिए तैयार हो जाता हैं । परंतु मरण समय मजबूरी से भी इस शरीर को छोड़कर परलोक की ओर चला जाना पड़ता है ।

भाड़े के मकान में व्यक्ति उतने समय तक ही रह सकता है, जितना उसने भाड़ा चुकाया है । अथवा बैंक का कैशियर भी तब तक ही पैसा देता है, जब तक बैंक के खाते में पैसे जमा हो । पैसों की जमाराशि पूरी होने पर कैशियर भी कुछ भी नहीं देता है ।

वैसे ही इस शरीर में हम तब तक ही रह सकते हैं जिस समय तक का, पुण्य का भाड़ा चुकाया हो ।

इस शरीर को छोड़ते समय यदि हमारे मन में शुभ भाव रहते हैं, तो हमारी सद्‌गति होती है, अन्यथा दुर्गति ही होती है ।

मरण कभी भी आ सकता है । जैसे वाहन चालक को हमेशा सावधान रहना है, वैसे ही आत्महित के अभिलाषी को हमेशा सावधान रहना चाहिए ।

आत्मा देह-मन-वचन-पुद्‌गल और कर्म से भिन्न है । मृत्यु से कभी आत्मा की मृत्यु नहीं होती, मृत्यु शरीर की होती है । आत्मा तो अजर-अमर और अविनाशी है । परंतु कर्म के साथ संयोग होने से जीवात्मा को विभिन्न भवों में जन्म लेकर शरीर धारण करना पड़ता हैं ।

इन कर्मों के बंधनों को तोड़ने का सर्वश्रेष्ठ उपाय नवकार महामंत्र की साधना-आराधना है । जीवन के अंतिम समय देह को छोड़ते मन में समाधि भाव पाने के लिए नवकार महामंत्र में मन की एकाग्रता जरूरी है । उस एकाग्रता को पाने के लिए हमें जीवन भर में बार-बार नवकार महामंत्र का स्मरण, ध्यान, जाप करना चाहिए ।

युवावस्था

एक बालक को होशियार युवक बनाने में माँ को बीस वर्ष लग जाते हैं, जबकि प्रेम में अंध बने उसी युवक को मूर्ख बनाने में पत्नी को 20 दिन भी नहीं लगते हैं । यौवन वय में कामवासना पर नियंत्रण न हो तो वह अपने कर्तव्य को चूक जाता है ।

78 हमारा मन पानी जैसा है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 24-11-2019**

पानी का कोई विशेष रंग या आकार नहीं है, उसमें जो रंग मिलाया जाता है, वह उस रंग में बदल जाता है। उसे जिस बर्तन में भरा जाय, उस आकार में वह बन जाता है।

हमारा मन भी पानी जैसा है, उसे जो निमित्त मिले, उस निमित्त के अनुसार उसमें भावों की तरंगें उठती हैं। अच्छे निमित्त से अच्छे भाव और खराब निमित्त से खराब भाव मन पर असर किये बिना नहीं रहते हैं।

मंदिर-उपाश्रय आदि धर्मस्थानों में मन धर्ममय विचारों से भावित होता है और सिनेमाघर, हॉटल आदि विलासी स्थानों में हमारा मन भोग-सुख एवं विषय-विलास से रंजित हो जाता है।

अत्यंत चंचल ऐसे मन को शुद्ध और पवित्र रखने के लिए खराब निमित्तों से बचकर अच्छे निमित्तों के बीच रहना चाहिए।

इस जगत् में सबसे अच्छा द्रव्य परमात्मा की **'जिन प्रतिमा'** है। उनके दर्शन से पाप का पुंज नष्ट हो जाता है।

सबसे अच्छा क्षेत्र अनंत सिद्धों की भूमि श्री शत्रुंजय महातीर्थ है। उस भूमि के प्रभाव से वहाँ जाते ही हमारे मन में दान-दया-प्रभु-भक्ति एवं त्याग, तप के भावों में अभिवृद्धि हो जाती है।

वर्ष भर में आने वाले पर्युषण महापर्व के दिन हमारे लिए सर्वश्रेष्ठ काल है, जिसके प्रभाव से नास्तिक आत्मा भी सद्धर्म के कार्यों में जुड़कर आठ उपवास आदि तप करने हेतु प्रयत्नशील हो जाती है और संसार के सभी जीव परम सुख को प्राप्त करें, यह सबसे श्रेष्ठ भाव है।

इस जगत् के सभी जीव कर्म के रोग से पीड़ित हैं। कर्मों से बँधे होने के कारण कोई भी अपना मित्र या शत्रु नहीं है। हमें सुख-दुःख

देनेवाला कोई व्यक्ति नहीं है । सुख-दुःख मात्र अपने पूर्वकृत शुभ-अशुभ कर्म का ही फल है ।

पत्र में लिखे शुभ-अशुभ समाचार डाकिये के द्वारा नहीं बल्कि पत्र भेजने वाले के द्वारा लिखे गए हैं, वैसे ही हमें प्राप्त होने वाले सुख-दुःख भी हमारे पूर्वकृत कर्मों के द्वारा भेजे गए हैं, सुख-दुःख देने वाला तो मात्र डाकिये की तरह मध्यस्थ व्यक्ति है ।

विचारों से व्यक्ति पापी और पावन भी बन सकता है । इसलिए सर्वश्रेष्ठ विचार यही है कि जगत् के सभी जीव शाश्वत सुखी बनें । यह शुभ भावना तीर्थंकर को जन्म देने वाली है ।

मात्र अपना विचार करना स्वार्थवृत्ति है और जगत् के सभी जीवों का विचार करना परमार्थवृत्ति है ।

जगत् के सभी जीवों का आत्मकल्याण कभी भी शक्य नहीं है, क्योंकि जगत् में जीवराशि अनंत प्रमाण में है । अन्य जीवों के सुख की चिन्ता से अन्य को सुख की प्राप्ति हो, ऐसा कोई नियम नहीं है । परंतु अन्य के सुख की चिन्ता से अपनी आत्मा शाश्वत सुख प्राप्त कर सकती है ।

दिनभर में हमारा मन अनेक शुभ-अशुभ विचारों से भावित होता है, उसमें भी अशुभ भाव तो हमेशा चलते रहते हैं । प्रयत्न अशुभ भाव के लिए नहीं बल्कि शुभ भाव के लिए करना है ।

यदि हमारे पास दोष-दृष्टि है, तो अच्छी वस्तु में भी दोष देखेगी और यदि हमारी दृष्टि गुणदृष्टि है, तो बुरी वस्तु में भी अच्छाई देखेगी । वस्तु कोई खराब या अच्छी नहीं, हमारी दृष्टि ही वहाँ गुण-दोष का निर्णय करती है अतः हमें शुभ भाव पाने के लिए गुणदृष्टि के लिए विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

One must have utmost faith in religion inspite of various hardships and difficulties...

79

ध्वजारोहण की महिमा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 25-11-2019**

शुद्धता की अपेक्षा सिद्ध भगवंत आठों प्रकार के कर्मों के बंधन से मुक्त हैं फिर भी जगत् पर कल्याण और उपकार करने में एक रसिक श्री अरिहंत परमात्मा का महत्व अधिक है ।

अरिहंत परमात्मा जब पृथ्वी तल पर विचरण करते है, तब उनके साथ करोड़ों देवता उनकी भक्ति में उपस्थित रहते हैं । परमात्मा के चरण-कमलों को धारण करने के लिए देवता 9 सुवर्ण कमलों की रचना करते हैं । स्वयं इन्द्र महाराजा भी उनके दोनों और चामर धारण करके भक्ति करते हैं । देवता घुटने प्रमाण तक सुगंधि पुष्प की वृष्टि करते हैं ।

चांदी-सोने और रत्न से बने समवसरण में जब परमात्मा देशना देते हैं, तब वैरी प्राणियों के वैर का भी नाश हो जाता है, सभी प्राणियों को परमात्मा की धर्मदेशना अपनी-अपनी भाषा में समझ में आती है । देवता देव-दुंदुभि का नाद करते हैं ।

ऐसे अरिहंत परमात्मा का ध्वजारोहण हमें आत्मा के उत्थान के लिए प्रेरित करता है । लहराती हुई ध्वजा हमें कहती है कि यदि जीवन में आत्मिक सुख की चाहना है तो इन जिनेश्वर परमात्मा की शरण स्वीकार करो ।

परमात्मा के मंदिर पर ध्वजारोहण करने वाला आत्मिक विकास को प्राप्त करता है । जैसे ध्वजा आकाश में लहराती है, वैसे हमें भी कर्मों से मुक्त होकर ऊर्ध्व-विकास करना है ।

संसार में धन-संपत्ति आदि की वृद्धि होना सच्ची उन्नत्ति नहीं है, सच्ची उन्नत्ति तो मोक्षपद की प्राप्ति में कारणभूत धर्म की आराधना में ही है । मोक्ष में आत्मा सर्व कर्मों से मुक्त हो जाती है ।

मनुष्य के जीवन में मान कषाय की प्रबलता है । सामान्य से भी देखा जाता है कि पशुओं का मस्तक झुका हुआ है, सीधा मस्तक मात्र मनुष्य का है, उसे झुकाना कठिन भी है और सरल भी । अन्य तप त्याग करना कठिन है, जबकि सिर्फ मस्तक झुकाकर नमन करना वैसे तो आसान है फिर भी अभिमान के कारण मनुष्य को मस्तक झुकाकर नमन करना कठिन है ।

सद्‌गुण संपन्न पवित्र आत्माओं को नमन करने से हमें भी उनके गुणों की प्राप्ति होती है ।

शरणागति

विज्ञान के पास केंसर का इलाज हैं परंतु
मन के भीतर पैदा हुई लोभ-वृत्ति को
दूर करने का उपाय नहीं है ।
आंख पर आए मोतीया बिंदु को
विज्ञान दूर कर सकता हैं,
परंतु आंख में पैदा हुई
विकार-वृत्ति को दूर करने का
इलाज विज्ञान के पास नहीं है ।
यह ताकत तो सिर्फ परमात्मा के
पास ही है ।
प्रभु की शरणागति मन के
लोभ और
आंख के विकार को दूर
करने में सक्षम है ।

80 अचिन्त्य चिन्तामणि है-नमस्कार महामंत्र

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 26-11-2019**

दुनिया की नजर में बड़ा पद, प्रतिष्ठा, सत्ता, राज्य, करोडों की संपत्ति पाने वाले बड़े भाग्यशाली माने जाते हैं, जबकि ज्ञानियों की नजर में जिसे अचिन्त्य चिंतामणि ऐसे नमस्कार महामंत्र की प्राप्ति हुई है, वह बड़ा भाग्यशाली है ।

अपने इच्छित को पूर्ण करने वाले कल्पवृक्ष, चिन्तामणि रत्न और कामधेनु गाय तो मात्र एक जन्म की मन की वांछा को पूर्ण कर सकते हैं । परंतु मनोवांछित की पूर्ति से समस्त समस्याओं का अंत हो जाय-ऐसा नहीं है । जबकि नमस्कार महामंत्र तो ऐसा अचिन्त्य चिंतामणि रत्न है, जिसके स्मरण से न मात्र मन की इच्छाएँ पूरी होती हैं परंतु समस्त इच्छाओं का अन्त आ जाए ऐसे परम सुख की भी प्राप्ति होती है ।

नौ प्रकार के पुण्यबंध में नौवाँ पुण्यबंध नमस्कार पुण्य है । जो नमस्करणीय है, उन्हें नमस्कार करने से विशाल पुण्य का बंध होता है ।

नवकार महामंत्र में सबसे पहले अरिहंत परमात्मा को नमस्कार किया जाता है । अन्य व्यक्ति को नमस्कार करने से वस्तु की प्राप्ति हो भी सकती है और न भी हो सकती है । जबकि अरिहंत परमात्मा को किये नमस्कार से आत्मा के कर्मबंधन नष्ट हो जाते हैं एवं उनकी आज्ञा का पालन तो दूर, आज्ञा पर बहुमान भी आत्मा को मुक्ति दिलाने में समर्थ है । आवश्यकता मात्र हमारे अन्तर्मन में पूर्ण श्रद्धा की है ।

डॉक्टर के द्वारा दी गई दवाई पर विश्वास हो तो सामान्य दवाई से भी रोग-मुक्ति हो सकती है । वैसे ही परमात्मा के प्रति श्रद्धा-विश्वास से आत्मिक रोगों से अवश्यमेव मुक्ति हो सकती है ।

वीणा के तीन तारों से सुमधुर संगीत पैदा होता है । परंतु तीन तार व्यवस्थित न हों, ढीले हों या अधिक प्रमाण में कसे गए हों, तो

सुंदर संगीत पैदा नहीं हो सकता है । वैसे ही मन-वचन और काया ये हमारी आत्मा के तीन तार हैं । यदि इन तीनों की एकता हो तो परमात्मा को किया एक भी नमस्कार, नर-नारी को भवसागर से पार उतारने में समर्थ है ।

हर व्यक्ति सुबह से शाम तक सिर्फ दौड़ रहा है । बच्चा स्कूलबस के लिए तो बड़ा व्यक्ति लोकल ट्रेन पकड़ने के लिए भाग रहा है । दिन भर अनेकानेक टेन्शनों में मन व्याकुल रहता है । ऐसी स्थिति में परमात्मा का मंदिर और सद्गुरु का सान्निध्य हमारे पाप-कार्यों में गतिरोधक बन जाते हैं ।

परमात्मा के मंदिर में माँगने के लिए नहीं बल्कि अर्पण करने के लिए जाना है । परमात्मा तो हमें अपने समान बनाने में सक्षम हैं, परंतु हमें उनके द्वारा प्राप्त किये वीतराग स्वरूप का सच्चा आकर्षण नहीं है । हमें तो संसार की ऋद्धि-सिद्धि-समृद्धि में सुख का आभास होता है और इसलिए परमात्मा के पास संसार के तुच्छ भोग-सुखों की प्रार्थना करते हैं ।

संसार की सारी समस्याओं का मुख्य कारण राग और द्वेष है । वस्तु या व्यक्ति के प्रति राग होने से उसके विरोधी व्यक्ति या वस्तु पर अवश्य द्वेष होता है । परमात्मा पूर्ण तया राग और द्वेष से मुक्त हो चुके हैं । उनके दर्शन करते समय हमें अपना आत्म निरीक्षण करना है कि मेरी आत्मा का भी सच्चा स्वरूप वीतराग परमात्मा के समान है । आत्मिक स्वरूप से अज्ञात हम संसार में ही मग्न बने हैं । परंतु जब परमात्मा के स्वरूप के बोध हमें अपनी आत्मा के सच्चे स्वरूप का पता चले, तो ही हम उनके समान बनने का प्रयत्न कर सकेंगे ।

Like Lord Mahavir to annihilate karma we must achieve the virtue of non-violence, tolerance, calmness and equanimity.

81

अभाव की प्राप्ति में दुनिया सुख मानती है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 27-11-2019**

जगत् में रहे सभी जीवात्माओं के मन में एक प्रबल इच्छा रही हुई है, **''मुझे सुख की प्राप्ति हो और मेरा दुःख दूर हो ।''** चाहे वह छोटी चींटी हो अथवा महाकाय विशाल हाथी हो, सभी सुखी होना चाहते हैं ।

निःसंतान को सन्तानप्राप्ति में सुख दिखता है, रोगी को आरोग्य में सुख दिखता है, निर्धन को धन की प्राप्ति में सुख दिखता है । जिसे जिस वस्तु का अभाव होगा, उसे उसकी प्राप्ति में सुख दिखता है । हर व्यक्ति के मन में सुख की अपनी अलग-अलग व्याख्या है ।

दीर्घ आयुष्य मिलने पर भी शरीर में रोग हो, निर्धनता हो या संतति का अभाव हो तो व्यक्ति सुखी नहीं होता ।

अमाप धन की प्राप्ति होने पर भी यदि आयुष्य का अंत नजदीक में हो तो भी प्राप्त हुई सारी संपत्ति सुख का कारण नहीं बन सकती ।

धन के अभाव में निर्धन दुःखी है । आरोग्य के अभाव में रोगी दुःखी है । तो तृष्णा के वश में धनवान व्यक्ति भी दुःखी है । दिन में दीपक लेकर ढूँढा जाय तो भी पूरी दुनिया में कोई सुखी व्यक्ति नहीं मिलता है ।

व्यक्ति जो कुछ भी खरीदने जाता है, उसे हर वस्तु असली चाहिए । असली वस्तु पाने के लिए व्यक्ति अधिक दाम देने के लिए भी तैयार हो जाता है । पदार्थ की शुद्धता और असलियत को परखने हेतु अनेक परीक्षा भी करता है । जैसे सोना खरीदने से पहले उसे कसा जाता है, फिर भी विश्वास न हो तो उसे काटते हैं, फिर भी विश्वास न हो तब आग में तपाया जाता है ।

दुनिया में जितनी असली वस्तुएं है उतनी नकली वस्तुएँ भी हैं। व्यापार में मुनाफा पाने के लिए व्यापारी नकली वस्तु भी असली के नाम से बेचता है। फिर भी व्यक्ति मात्र नाम से खरीदी नहीं करता, परीक्षा अवश्य करता है।

हर वस्तु की शुद्धता में रसिक व्यक्ति सुख के विषय में असली सुख को छोड़कर नकली पसंद कर लेता है।

संसार का सारा सुख असली नहीं, बल्कि नकली है। जो सुख पराधीन हो, जो सुख प्राप्त होने के बाद पुनः आधि-व्याधि और उपाधि बढती हो, ऐसा अपूर्ण सुख, असली कैसे हो सकता है ?

तारक तीर्थंकर परमात्मा का इस जगत् पर सबसे बड़ा उपकार यही है कि उन्होंने सच्चे सुख की पहिचान कराई है। अनंत सुखी बने परमात्मा जगत् के सभी जीवों को अनंत सुख का ही उपदेश देते हैं।

दुनिया कहती है जिसके पास ज्यादा धन है वह सुखी, जबकि परमात्मा कहते हैं, जिसके पास ज्यादा धन है, वह परम दुःखी है। परमात्मा ने धनसंग्रह में सुख नहीं बताया है, असली सुख तो त्याग में है।

मोह के अधीन आत्मा सुकोमल शय्या आदि के स्पर्श में सुख मानती है, स्वादिष्ट भोजन, सुमधुर संगीत, अच्छा रूप एवं सुगंध में सुख का भ्रम करती है। इन्द्रियों को अनुकूल वस्तु हैं तो उसे हम सुख मानते हैं और प्रतिकूल हो तो दुःख मानते हैं। परंतु वह सुख सच्चा नहीं है। इन सारे सुखों के साथ में अनेक दुःख जुड़े हुए हैं। अतः इनकी प्राप्ति में नहीं बल्कि इनका त्याग कर आत्मा के भीतर रहा सुख ही सच्चा सुख है।

जहाँ बंधन है, वहाँ गुलामी का दुःख है। संसार में रही सभी आत्माएँ कर्मों से बंधी होने के सुख कारण दुःखी हैं। त्याग के मार्ग पर चलकर मोक्ष पद पाने में सुख है। संसार का सुख पुण्य के अधीन है, पुण्य पूरा होने पर वह सुख भी दुःख में बदलते देर नहीं लगती। संसार के हर सुख के आगे-पीछे दुःख खड़ा है, इसके त्याग से ही सुख प्राप्त हो सकता है।

82 सर्वश्रेष्ठ और सारभूत श्री नवकार महामंत्र

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 28-11-2019**

घर में आग लगने पर व्यक्ति गद्दी-तकिये-फर्नीचर आदि सामान्य वस्तु को लेकर नहीं भागता है, बल्कि सोना-चांदी-नकद रुपये आदि श्रेष्ठ वस्तुएँ लेकर दौड़ता है । अर्थात् घर में अनेक सामग्री होने पर भी व्यक्ति सारभूत पदार्थ, वजन में हल्का हो, फिर भी कीमती हो, उसे ही पसंद करता है ।

वैसे ही इस संसार में अनेक मंत्र-तंत्र आदि हैं । उन सभी में सर्वश्रेष्ठ और सारभूत मंत्र-श्री नवकार महामंत्र है । इस महामंत्र में पाँच परमेष्ठी को नमस्कार है ।

दुनिया में पाँच के अंक की अनेक वस्तुएँ हैं । इस दुनिया में सबसे अधिक दुःखी नरक के जीव हैं, उससे कम तिर्यंच, उससे कम दुःखी मनुष्य हैं और देवता सुखी हैं । देवताओं में भी पांच अनुत्तर विमान-वासी देवता अतिसुखी हैं ।

पाँच प्रकार की इन्द्रियाँ हैं-आत्मा अपनी इन्द्रियों का दुरुपयोग कर अपना पतन करती है और संयमित रहकर सदुपयोग करके उत्थान भी कर सकती है ।

पाँच प्रकार के पापाचरण हैं-हिंसा-झूठ-चोरी-मैथुनसेवन और परिग्रह । इन पापाचरण के द्वारा आत्मा खूब पापार्जन करती है ।

इन पाँच पापों के कारण भी मिथ्यात्व - अविरति - प्रमाद - कषाय और योग हैं ।

मिथ्यात्व यानी विपरीत बुद्धि । इस मिथ्यात्व के कारण ही जीवात्मा चार गति रूप संसार में दीर्घ काल से परिभ्रमण कर रही है । अन्य पाप के आचरणों से जीवात्मा को दुःख की प्राप्ति होती है, जबकि मिथ्यात्व के कारण तो जीवात्मा को विपरीत बुद्धि पैदा होती है ।

पाँच इन्द्रिय के पाँच विषय से ही विषयसुख का अनुभव होता है स्पर्श, रूप, रस, गन्ध और शब्द ।

कार्य पैदा होने में मुख्य कारण पाँच हैं-काल, स्वभाव, भवितव्यता, कर्म और पुरुषार्थ ।

जिनेश्वर परमात्मा के पाँच प्रकार के कल्याणक होते हैं-च्यवन, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान और निर्वाण ।

आत्मा के लिए अंतरायभूत 5 अंतराय हैं-दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

दान के भी पाँच भूषण हैं-आनंदअश्रु, रोमांच, बहुमान, प्रिय वचन और अनुमोदना । तो दान को दूषित करने वाले दूषण भी पाँच हैं-अनादर, विलंब, विमुखता, अप्रियवचन और पश्चात्ताप ।

ऐसी पाँच प्रकार की अनेक वस्तुओं में सबसे महत्त्वपूर्ण और सार-भूत पाँच परमेष्ठी हैं । इनको किया हुआ वन्दन आत्मा को शाश्वत सिद्धि-पद प्रदाता है ।

भूल

ज्यों ज्यों अपनी भूलों को छुपाने
की कोशिश करते है,
त्यों त्यों वे बडी होती जाती हैं
और उन भूलों को ज्यों ज्यों
प्रकट करने की कोशिश करते हैं,
त्यों त्यों वे नष्ट होती जाती हैं ।
कपूर को खुला रखने पर
वह टिकता नहीं है, उसी प्रकार दोषों
को प्रकट करने पर वे दोष अपनी आत्मा
में टिकते नहीं है ।

83 भव-भ्रमण का अंत करे वह तीर्थयात्रा

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 08-11-2019**

यात्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं । जीवन में अनेक सुख-दुःखों को सहन करते हुए व्यक्ति की यात्रा को जीवनयात्रा कहते है । दूर देश में जाने के लिए रेल यात्रा, वाहन यात्रा आदि की जाती हैं । जीवन यात्रा पूरी होने पर मनुष्य की अंतिम यात्रा को श्मशान यात्रा कहते है ।

इन यात्राओं से कोई लाभ नहीं । सच्ची यात्रा तो वह है, जो हमारे भवभ्रमण का अंत करे । भवभ्रमण को बढ़ाने वाली यात्रा, सच्ची यात्रा नहीं है । अतः भवभ्रमण का अंत करनेवाली तीर्थ की यात्रा हमें जीवन में अवश्य करनी चाहिए ।

जिनेश्वर परमात्मा के पाँच कल्याणक की भूमियाँ, सौ वर्ष पहले प्रतिष्ठित परमात्मा के मंदिर या प्रतिमाएँ आदि स्थावर तीर्थ हैं, उसी प्रकार परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट आत्मकल्याण के मार्ग पर संयमयात्रा करनेवाले साधु-साध्वीजी जंगम तीर्थ हैं ।

तीर्थ की भक्ति करने से आत्मा स्वयं तीर्थंकर पद प्राप्त करती है । तीर्थ की यात्रा करते समय हमें विशेष नियमों का पालन करना चाहिए । तीर्थयात्रा में शरीर को जितना अधिक कष्ट पड़ेगा, उतने अधिक प्रमाण में कर्मों की निर्जरा होगी ।

शरीर और आत्मा दोनों की पसंदगी में हमें एक को अवश्य छोड़ना होगा । तीर्थयात्रा करते समय शरीर की सारी अनुकूलताओं का आनंद उठाना चाहेंगे तो वह यात्रा आत्मा को नुकसान करने वाली होगी । अतः तीर्थयात्रा समय आत्मा को ही प्रधानता देनी चाहिए ।

तीर्थयात्रा में आहार पर विशेष संयम जरूरी है । शक्य हो तो उपवास करना चाहिए । उपवास न हो तो परिमित आहार और सात्त्विक आहार से एक ही बार भोजन लेना चाहिए ।

तीर्थयात्रा में जीवदया का पालन करने हेतु जूते-चप्पल आदि

का त्याग करना चाहिए । यतना पूर्वक, देखकर चलते से स्व-पर दोनों की रक्षा होती है । जीव-जन्तु का भी रक्षण होगा, अपने पैर गंदे नहीं होंगे तथा काँटों से भी बचा जा सकेगा ।

तीर्थयात्रा में हमें घर-संसार का त्याग करना चाहिए । अधिकतर तीर्थक्षेत्र पर्वतों या जंगलों में रहे हुए हैं । ऐसे स्थानों में परमात्मा में लीन बनने के लिए एकांत की प्राप्ति होती है । भीड़-भाड़ वाले क्षेत्र में परमात्मा से संबंध जोड़ना कठिन होता है ।

तीर्थयात्रा करने वाले यात्रिकों की धूल भी पूजनीय बन जाती है क्योंकि तीर्थयात्रा करने वाला आज किसी भी स्थिति में हो, भविष्य में उनमें से ही कोई आत्मा आचार्य, साधु, गणधर, यावत् तीर्थंकर भी हो सकती है ।

उनकी भक्ति करने से भी हमारे भवभ्रमण का सहजता से अंत आ जाता है ।

सुख के साधन

दुनिया में चाहे जितने बड़े
सुख या सुख के साधन हों,
परंतु वे प्रशंसनीय नहीं हैं ।
चक्रवर्ती के सुख भी निंदनीय ही हैं ।
चक्रवर्ती के सुख भी छोड़ने
योग्य ही हैं । चक्रवर्ती भी उन
सुखों को छोड़ता है तो स्वर्ग या
मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।
और उन सुखों को नहीं
छोड़ता है तो मरकर सातवीं
नरक में चला जाता है ।

84 श्रावक-जीवन में तीर्थ यात्रा की प्रधानता है

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 30-11-2019**

श्रावक-जीवन में तीर्थयात्रा करते समय छह नियमों का पालन करना चाहिए । साधु जीवन में इन छह नियमों का पालन जिंदगी भर होता है ।

छह नियमों में सचित्त भोजन का त्याग, पैदल विचरण, भूमि पर शयन, एकासना कर एक बार ही भोजन का स्वीकार, सुबह-शाम दोनों टाइम राई और देवसी प्रतिक्रमण एवं मन-वचन और काया से ब्रह्मचर्य का पालन करना है ।

इन छह नियमों के पालन करते हुए पैदल संघ यात्रा करने से संयमजीवन का प्रशिक्षण Training प्राप्त होता है ।

संघ यात्रा करते समय साधर्मिक का समागम होता है । जगत् में चारों गतियों में परिभ्रमण करते समय हमारी आत्मा ने सभी जीवों के साथ माता-पिता-भाई-बहन-शत्रु-मित्र आदि के संबन्ध अनंती बार किये हैं । नहीं किया हैं एक मात्र साधर्मिक का संबंध । क्योंकि वीतराग परमात्मा के बताए धर्म पर आचरण तो दूर रहो, उस धर्म की प्राप्ति भी मुश्किल है ।

धर्म की सामग्री मिलने पर भी धर्म के नियमों का पालन और भी कठिन है । क्योंकि पूरी दुनिया धन-संपत्ति के संचय में सुख मानती है जबकि वीतराग परमात्मा ने धन के संचय में नहीं बल्कि धन के त्याग में सुख कहा है ।

भवभ्रमण का अंत करने के लिए साधुजीवन में संयम यात्रा एवं श्रावक जीवन में तीर्थ यात्रा की प्रधानता है । तीर्थ यात्रा करते समय विशेष रूप से यतना का पालन करना चाहिए ।

नीचे देखकर चलने से हम न मात्र काँटों से बचते हैं, बल्कि जीवों की दया भी होती हैं । चलते समय छोटे से जीव की भी हिंसा न

हो जाय इसकी हमें चिन्ता करनी चाहिए । कोई भी वस्तु लेते-रखते समय उस जगह और उस वस्तु को अच्छी तरह से प्रमार्जन करना चाहिए ।

वर्तमान में विज्ञान के साधनों से हर काम आसान हुआ है, परंतु यतना का भाव नष्ट हो गया है । पहले व्यक्ति अपना सामान खुद उठाता था, आज थैलों और बेग में भी पहियें लग गए हैं । व्यक्ति चलते समय यतना का पालन कर सकता है, परन्तु पहियों के वाहन से तो यतना का पालन संभव ही नहीं है ।

तीर्थयात्रा के द्वारा प्रत्येक श्रावक को यही लक्ष्य रखना चाहिए कि तीर्थयात्रा करते-करते हमें भी जीवन में संयमयात्रा करने का सद्भाग्य मिले ।

कर्मसत्ता

पुण्योदय से प्राप्त तन,
मन और धन की शक्तियों का
सदुपयोग करने से अगले
जन्म में वे शक्तियाँ अधिक-अधिक
प्राप्त होती हैं और उन्हीं शक्तियों का
दुरुपयोग करने से वे ही
शक्तियाँ दुर्लभ हो जाती हैं ।
कर्मसत्ता के पास न्याय है ।
पुण्योदय से प्राप्त सामग्री का
सदुपयोग करोगे तो वह और
अधिक सामग्री प्रदान करेगी ।

छ'री पालक संघ

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 31-11-2019**

श्रावक-जीवन में तीर्थ एवं तीर्थयात्रा की खूब-खूब महत्ता है क्योंकि घर छोड़कर तीर्थभूमि में जब जाते हैं, तब वहाँ का वातावरण कुछ अलग ही होता है ।

घर में अर्थ और काम से केन्द्रित जीवन होता है, जबकि तीर्थ में त्याग और संयम की साधना होती है । साधु जीवन में तीर्थयात्रा का इतना अधिक महत्त्व नहीं है, क्योंकि साधु स्वयं जंगमतीर्थ रूप है और उस जीवन में संयमयात्रा की प्रधानता है । साधु-जीवन के संयम के योगों को बाधा न आये, इसी ढंग से साधु को जीवन जीना होता है, इसलिए तीर्थयात्रा गौण है, संयमयात्रा प्रधान है, जबकि गृहस्थ का जीवन तो आरम्भ-समारम्भ में ही डूबा होता है, अतः उस जीवन में तीर्थयात्रा खूब महत्त्व की है ।

आजकल ट्रेन-बस का व्यवहार खूब बढ गया है । जहाँ देखो, वहाँ तीर्थों में हजारों यात्रिक नजर आते हैं । परन्तु उस यात्रा का मुख्य उद्देश्य और तीर्थयात्रा की विधि लगभग भुला दी गई है ।

तीर्थयात्रा का मुख्य उद्देश्य भवयात्रा का अंत लाने का है । भवयात्रा का अंत लाने के लिए वह यात्रा भावयात्रा बननी चाहिए ।

भावयात्रा बिना भवयात्रा का अंत नहीं है । भवयात्रा अर्थात् भवभ्रमण तो खूब किया है, अब उसका अंत लाना है, अतः तीर्थयात्रा, तीर्थयात्रा के नियमपूर्वक होनी चाहिए ।

कष्ट सहन करने के बाद जब प्रभु मिलते हैं, तब उस प्रभु मिलन का आनंद कुछ और ही होता है । जैनों के अतिप्राचीन और मुख्य तीर्थ लगभग जंगल या पर्वत पर ही आये हुए हैं ।

प्रभुमिलन का सच्चा आनंद ही यही है कि हमें संसार के सभी

भौतिक सुख नीरस लगें, उन सुखों के प्रति दिल में थोड़ा भी आकर्षण भाव न रहे, क्योंकि वे सुख असली नहीं, बल्कि नकली हैं ।

दु:खों को सहर्ष स्वीकार किये बिना आत्मा को सच्चा सुख मिलता ही नहीं है, इसीलिए प्रभु की यात्रा कष्टप्रद है । सुखों को लात मारना और दु:खों को हँसते मुँह स्वीकार करना यह प्रक्रिया जिसे मंजूर हो, वो ही प्रभु को पा सकता है ।

तीर्थयात्रा तो प्रभु के साथ नाता जोड़ने के लिए है । शरीर की सुखशीलता ब्रह्मचर्य पालन में बाधक है । शरीर को जितनी सुख-सुविधाएँ देंगे उतना ही ब्रह्मचर्य पालन कठिन होता है । उठने, बैठने व सोने में गद्दी तकिये का उपयोग स्वादिष्ट और मसालेदार भोजन, अच्छे-रंगीन और आकर्षक वेशभूषा, सौंदर्य-प्रसाधनों का प्रयोग, ठंडे जल से स्नान आदि ब्रह्मचर्य के दुश्मन हैं ।

तीर्थयात्रा के माध्यम से हम दुनिया के साथ नाता तोड़ते हैं और प्रभु के साथ नाता जोड़ते हैं । प्रभु के साथ नाता जोड़ना हो तो भौतिक सुख एवं सुख के साधनों से नाता तोड़ना ही होगा और बाह्य कष्टों से नाता जोड़ना ही होगा ।

अंतराय

यथा शक्ति जीवन में दान, शील और तप धर्म की आराधना करें परंतु अन्य कोई आराधना करता हो तो उसे अंतराय कभी नहीं करना चाहिए । किसी को अंतराय करने से अपने को प्राप्त शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं और भविष्य में भी वे शक्तियाँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं ।

86

सामूहिक तीर्थयात्रा से होती है विशेष भावों की वृद्धि

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 01-12-2019**

श्रावक-जीवन के वार्षिक ग्यारह कर्तव्यों में तीसरा कर्तव्य है—तीर्थयात्रा । श्रावक को प्रतिवर्ष छ'री के पालन पूर्वक किसी भी पवित्र तीर्थ की यात्रा अवश्य करनी चाहिए ।

पुण्योदय से जिसे विशेष लक्ष्मी प्राप्त हुई हो, उसे परिग्रह के पाप से बचने के लिए जैनधर्म की भक्ति-आराधना एवं प्रभावना हो सके, तथा अन्य के दिल में भी धर्म-आराधना करने के मनोरथ हो ऐसे शासनप्रभावक कार्यों मे अपनी असार लक्ष्मी का उपयोग करना चाहिए ।

सद्गुरु के सान्निध्य में जब इस प्रकार के सामुदायिक अनुष्ठानों का आयोजन होता है, तब अनेक नए-नए व्यक्तियों का सद्गुरु के साथ परिचय-संपर्क होता है । तथा प्रभावक प्रवचनों से अनेक जीवन में आमूलचूल परिवर्तन हो जाता है ।

सामुदायिक तीर्थयात्रा का भी खूब महत्व है । जब कोई अनुष्ठान सामूहिक रूप में होता है तब बालक से बड़े, सभी लोगों के भावोल्लास में खूब वृद्धि सहजता से होती है ।

कोई अकेला व्यक्ति पैदल तीर्थयात्रा के लिए जाता है और संघ के साथ समूह में यात्रा करता हो तो भावों के अध्यवसायों में खूब फर्क पड़ता है ।

भावों की अभिवृद्धि के लिए ही प्रत्येक श्रावक को प्रति वर्ष पवित्र तीर्थो की यात्रा अवश्य करनी चाहिए ।

तारक तीर्थंकर परमात्माओं के चरण कमलों से पावन बनी भूमि

'तीर्थ' कहलाती है । जहाँ जहाँ परमात्मा के समवसरण रचे गये हों, वह भूमि भी तीर्थ कहलाती है ।

जिन जिनालयों की स्थापना या प्रतिमा की स्थापना को 100 वर्ष से अधिक समय बीत चुका है वे जिनालय भी तीर्थ स्थान के रूप में माने जाते हैं ।

हमें प्राप्त हुए धन का सदुपयोग करना चाहिए । धन की मात्र तीन गतियाँ हैं दान, भोग और नाश ।

जैसे पानी यदि नहर के रूप में बहता है, तो वह खेत आदि में सिंचाई के काम आता है और वही पानी बाढ़ का रुप ले ले तो वही पानी विनाशकारक बन जाता है ।

वैसे ही धन की सच्ची सफलता दान में है । यदि दान में उसका उपयोग नहीं होता है तब वह धन भोग के द्वारा पाप कार्य कराता है और नाश के मार्ग में चला जाता है ।

दिखने में तो दान देने से पैसा कम होता है, परंतु दान में दिया पैसा पुण्य की बैंक में निधि के रूप में स्थायी बन जाता है ।

तीर्थयात्रा करने से तथा अन्य को भी छ'री पालन पूर्वक संघ यात्रा कराने से धन का पुण्यक्षेत्र में वपन होता है, जो हमें आगामी जन्मों में धर्म की सामग्री प्रदान करके आध्यात्मिक विकास के मार्ग में अविरत वृद्धि कराता है ।

साधुता

जो सदैव सहन करें, सहायता करे और
साधना करें, वे साधु कहलाते है ।
संसार के भोगसुखों से मुक्त होकर जो
सदैव आत्मानंद की मस्ती में
लीन रहते हैं, ऐसे साधु भगवान
मोक्ष मार्ग के सच्चे मुसाफिर हैं ।

87

धर्म में थोड़ी भी पीड़ा सहन करने से बड़ी लाभदायी

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 02-12-2019**

आराधना करने के लिए सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने अनेक योग बताए हैं । कोई साधुधर्म की आराधना करते हैं तो कोई साधुजीवन पाने के मनोरथों के साथ श्रावकजीवन में व्रत नियमों का पालन करते है । कोई दान देते हैं, कोई शील धर्म पालते हैं, कोई अनेकविध तप करते हैं तो कोई शुभ भावनाओं से मन को भावित बनाकर अपार कर्म की निर्जरा करते हैं ।

वाणिज्य क्षेत्र में वह व्यापार सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, जिसमें व्यय कम हो और लाभ ज्यादा हो । वीतराग परमात्मा ने भी हम जैसे पापी जीवों का उद्धार करने के लिए ऐसे ही धर्मानुष्ठान बताए हैं जिनमें शरीर पर हुए थोड़े कष्टों से जन्म-जन्मों तक किये पापकर्मों का नाश हो जाता है ।

मनुष्यलोक में रहे सभी मनुष्यों के सभी रोगों को इकट्ठा कर एक व्यक्ति में प्रवेश कराये जायें, तब जो पीड़ा होती है, उससे अनेक गुणी पीड़ा नारकी जीव निरंतर सहन कर रहे हैं । नरक की वेदना को सहन करते नारकी जीव जितने कर्मों का क्षय 100 वर्षों में करते हैं, उतने कर्मों का क्षय हम मात्र सूर्योदय से 48 मिनिट तक आहार-पानी का त्याग कर एक नवकारशी के प्रत्याख्यान से कर सकते हैं । जब हम आयंबिल करते हैं, तब नरक के जीव 1000 करोड़ वर्षों तक कष्टों को सहन कर जितने कर्मों का क्षय करता है, उतने कर्मों का क्षय हम एक आयंबिल से कर सकते हैं ।

जितने अंश में हम परमात्मा की आज्ञा का पालन करते हैं उतने प्रमाण में हमें दर्शन-ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति होती है ।

मोक्षमार्ग की आराधना, साधना का यदि कोई मूलाधार है, तो वह सम्यग्दर्शन है । जैसे वृक्ष का आधार जड़ है, इमारत का आधार उसकी मजबूत नींव है । वैसे ही मोक्षमहल की आधारशिला सम्यग्दर्शन है ।

सम्यग्दर्शन पूर्वक की गई सभी आराधनाएँ मोक्ष का कारण बनती हैं, जबकि सम्यग्दर्शन के अभाव में चारित्र और तप भी कायाकष्ट ही कहलाता है तथा ज्ञान भी अज्ञान कहलाता है ।

सम्यग्दर्शन की प्राप्ति में मुख्य आलंबन परमात्मा एवं सद्गुरु भगवंत हैं । छ'री पालक संघ में हम पूरे दिन देव और गुरु के पास रहकर आराधना करते हैं । छ'री पालक संघ यात्रा के माध्यम से अनेक जीवों को देव और गुरु का प्रबल आलंबन मिलता है ।

प्रभु की भक्ति तो मुक्ति की दूती है । निष्काम और निःस्वार्थ भाव से प्रभु की भक्ति करने से आत्मा को सम्यग्दर्शन गुण की प्राप्ति होती है और पूर्व में प्राप्त हुआ सम्यग्दर्शन निर्मल बनता है ।

देह-भक्त

स्नान, तेल, इत्र,
धूप, दीप, चावल, मिठाई और
फल द्वारा देह की
अष्टप्रकारी पूजा करनेवाले के पास
प्रभु की अष्टप्रकारी पूजा करने के लिए
समय का सर्वथा अभाव है ।
मात्र केसर से तिलक लगाकर वह
प्रभु-पूजा पूरी कर लेता है ।
उसे प्रभुभक्त कहें या
देहभक्त ? यही सवाल है ।

88 सद्गुरु भवसागर से पार उतारकर मुक्तिनगर ले जाते हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 03-12-2019**

गंगा-यमुना और सरस्वती नदी के मिलन-स्थान को प्रयाग तीर्थ कहते है, वैसे ही परमात्म-भक्ति, गुरु-भक्ति और साधर्मिक की भक्ति के त्रिवेणी संगम स्वरूप छ'री पालक महासंघ में हमें तीनों की भक्ति का परम सौभाग्य प्राप्त होता है ।

पैसों की प्राप्ति तो पुण्य के उदय से होती है, परंतु प्राप्त पैसों का धर्म क्षेत्र में सद्व्यय के लिए विशेष पुण्यानुबंधी पुण्य की आवश्यकता रहती है । पैसे मिलने पर भी जो **'हाय पैसा ! हाय पैसा !'** करते हुए रोना ही रोता है, उसे मरते समय तक पैसों की ही चिंता सताती रहती है ।

जो व्यक्ति धर्म के कार्यों में धन का सद्व्यय नहीं कर सकता वह सर्वसंग के त्यागस्वरूप चारित्रधर्म की प्राप्ति कैसे कर सकता है ? अतः धर्म के कार्यों में बड़ी उदारता से धन का सद्व्यय करना चाहिए । उदारता से किये धर्मानुष्ठान से अन्य जनों के मन में भी धर्म आराधना में जुड़ने एवं सद्गुरु के समागम से एकांत लाभ होता है ।

सद्गुरु को लकड़ी की नाव के समान बताया है । जैसे लकड़े की नाव स्वयं तैरती है और उसके सहारे अन्य भी नदी तैर सकते हैं, जबकि पत्थर की नाव स्वयं पानी में डूबती है और अन्य को भी ले डूबती है । सद्गुरु लकड़ी की नाव बनकर हमारी आत्मा को भवसागर पार उतारकर मुक्तिनगर में ले जाते हैं ।

जो आत्माएँ परमात्मा और सद्गुरु की शरण स्वीकार करती हैं, उन्हें हर प्रकार के भयों से अभय प्राप्त होता है । परमात्मा और परमात्मा के शासन की छोटी भी आराधना से आत्मा का अवश्य उत्थान होता है ।

आत्मा की सुरक्षा सद्गुरु के समागम में है । जैसे पशु को रखने के लिए मात्र चारों ओर काँटों की बाड़ पर्याप्त है जबकि मनुष्य को रखने के लिए चारों ओर दीवालें भी जरूरी हैं, तो साथ में छत भी जरूरी है ।

वैसे ही आत्मा की सुरक्षा के लिए जीवन में व्रतनियमों की दीवारों के साथ सद्गुरु की छत्रछाया भी आवश्यक है । परमात्मा के विरह में परमात्मा की प्रतिमा हमें सद्धर्म में आगे बढ़ने में आलंबन बनती है परंतु उनके सच्चे स्वरुप का ज्ञान तो सद्गुरु के सान्निध्य से ही हो सकता है ।

औचित्य पालन

जो व्यक्ति धर्म क्षेत्र में 5 लाख रुपए का दान करता हो...और उसका भाई या अन्य साधर्मिक आर्थिक संकट में हो तो उनको मदद करना उसका प्रथम कर्तव्य हो जाता है ।

भाई भूखा मरता हो या दुःखी हो, ऐसा व्यक्ति समाज में 10 लाख का भी दान करता हो तो उसका वह दान औचित्यपूर्ण नहीं कहलाएगा ।

लाखों का दान देनेवाले के द्वार पर कोई गरीब आए तो उसे थोडी बहुत मदद करने की उसकी तैयारी होनी ही चाहिये ।

89 धर्मदेशना द्वारा अरिहंत परमात्मा सबसे बड़ा उपकार करते हैं

आर.एस.पुरम्-कोयंबत्तुर **दि. 03-12-2019**

प्यासे व्यक्ति को पानी पिलाने से व्यक्ति पर उपकार जरूर होता है परंतु 1-2 घंटों के बाद पुनः प्यास लग जाती है ।

भूखे व्यक्ति को भोजन खिलाने से व्यक्ति पर उपकार जरूर होता है, परंतु 8-10 घंटों के बाद पुनः पेट खाली हो जाता है, भूख लग जाती है ।

कपड़े रहित को कपड़ा देने से भी उपकार होता है परंतु 4-5 महीनों में कपड़ा फट जाता है, पुनः कपड़े की जरूरत रहती है । मकान रहित व्यक्ति को राजमहल जैसा मकान दे दिया जाय तो उसमें भी व्यक्ति तभी तक रह सकता है, जब तक उसका आयुष्य है ।

संसार एक ऐसा जाल है, जिसमें समस्याओं का कोई अंत नहीं है । यहाँ एक समस्या पूरी होने पर दूसरी समस्या पैदा हो जाती है ।

भव्य जीवों पर शाश्वत काल तक उपकार करने के लिए सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा ने संसार की छोटी-छोटी समस्या पूर्ति करने का उपाय नहीं बताया, बल्कि संपूर्ण संसार का ही अंत करे ऐसा मोक्षमार्ग बताया है ।

जगत् के जीवों पर सबसे बड़ा उपकार अरिहंत परमात्मा अपनी धर्म देशना के माध्यम से करते हैं । तीर्थंकर परमात्मा के अभाव में सद्गुरु भगवंत प्रवचन के माध्यम से जगत् के जीवों पर उपकार करते हैं ।

जैसे एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती हैं । एक गुफा में दो केशरी सिंह नहीं रह सकते हैं । एक आकाश में दो सूर्य नहीं रह सकते हैं । वैसे हीं एक हृदय में संसार और परमात्मा दोनों एक साथ नहीं रह सकते हैं ।

जब तक हृदय में संसार के सगे-संबंधी-शरीर-दुकान-घर आदि की चिंता रहेगी, तब तक हृदय में परमात्मा की प्रतिष्ठा नहीं हो सकती । इसलिए परमात्मा को हृदय में स्थापित करने के लिए संसार की चिंता से दूर होना खूब जरूरी है ।

छ'री पालक संघ के द्वारा हमें परमात्मा के साथ संबंध जोड़ने का मौका मिलता है । तीर्थयात्रा में सुबह से लेकर सारा कार्य परमात्मा की आज्ञा से होने से परमात्मा के साथ आत्मा का संबंध जुड़ता है ।

सारी दुनिया पैसे-पुण्य और परमात्मा में पैसे को अधिक बलवान मानती है । पैसेवालों को देखकर उनके सुख का आकर्षण रहता है । परंतु पैसा आने के बाद व्यक्ति सुखी हो जाएगा ऐसी कोई गारंटी नहीं है । पैसे से भी पुण्य का बल अधिक है । संसार की हर सामग्री पुण्य से मिलती है । परंतु पुण्य से भी अधिक बलवान परमात्मा है । जिसे परमात्मा की प्राप्ति हुई है, उसे जगत् में किसी की भी आवश्यकता नहीं है ।

परमात्मा की संपूर्ण आज्ञा का पालन साधुजीवन में शक्य है । श्रावक आंशिक रूप से परमात्मा की आज्ञा पालन कर सकता है । श्रावकजीवन में जब जीवदया का पालन होता है, तब वह परमात्मा की आज्ञा का पालन करता है । जीवदया तो जैनों की सच्ची कुलदेवी है । जीवदया के पालन से हमें जीवन में दीर्घ आयुष्य, रोग रहित शरीर, श्रेष्ठ रुप एवं सर्वसमृद्धि की प्राप्ति भी होती है ।

The story of Kapil is a moral to all of us..
If allowed, Greed and avarice leads us into a web..
a web of sins and consequent suffering..
But when combined with contentment..
satisfaction.. being happy with what one has..
then happiness and peace prevails..

परिशिष्ट-१

मरुधर रत्न पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. आदि ठाणा-5 के ईस्वी सन् 2019 के चातुर्मास का आंखों देखा हाल ।

दि. 6 सितंबर से पूज्य आचार्य भगवंत के प्रेरणादायी प्रवचन प्रातः 9.30 बजे जैन मैनर में चालू हुए ।

पर्वाधिराज महापर्व की आराधना बहुत ही हर्षोल्लास से संपन्न हुई ।

दि. 6 सितंबर-शुक्रवार को प्रातः 7 बजे पूज्य आचार्य भगवंत महावीर कॉलोनी पधारे । वहां विकास एवं अक्षित जैन के गृहांगण में पगले-हितशिक्षा प्रवचन हुआ ।

दि. 7 सितंबर को प्रातः 9.15 बजे पूज्यश्री वाजते गाजते राकेशजी चोपडा व विमलचंदजी महेता के गृहांगण में पधारे, वहीं पर पूज्यश्री का 1 घंटा प्रवचन व संघपूजन हुआ । दि. 8 सितंबर को चैन्नइ से चातुर्मास व उपधान की विनंती के लिए पधारे ।

जैन मैनोर में ठीक 9.30 बजे पूज्य आचार्य भगवंत के मंगलाचरण के बाद सुरेशभाई ने सभा का संचालन करते हुए पूज्य आचार्य भगवंत के पुण्य प्रभाव का वर्णन किया । उसके बादा कोंडीतोप चैन्नाइ संघ ने पूज्यश्री को आगामी चातुर्मास की विनंती की, पू. गच्छाधिपतिश्री की आज्ञा व आशीष पत्र अनुसार पूज्य आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.ने अपने आगामी चातुर्मास की सम्मति प्रदान की। पूज्यश्री की सम्मति मिलते ही सभी ने जय-जयकार द्वारा अपनी खुशी व्यक्त की । उसके बाद भरतभाई पुखराजजी पोरवाल ने अप्रेल मास में उपधान तप में निश्रा प्रदान करने की विनती की, पूज्यश्री ने अपनी सम्मति प्रदान कर उपधान तप का मुहुर्त भी प्रदान किया ।

उसके बाद कोयम्बुतर से अवलपुंदरी के 10 दिवसीय छ'री पालक संघ के मुहुर्त हेतु विनती करने पर पूज्यश्री ने संघ प्रयाण व तीर्थ प्रवेश का मुहुर्त प्रदान किया । उसके बाद रमेशजी बाफना की ओर से उपधान आयोजक परिवार का बहुमान किया गया ।

उसके बाद **'आंसूओं की ताकत'** विषय पर पूज्य आचार्य भगवंत का प्रभावशाली प्रवचन हुआ । अंत में 110 रु. का संघपूजन हुआ ।

दि. 9 सितंबर सोमवार को 9.15 बजे संघ सहित पूज्य श्री वाजते गजते शा. महेश मोहनराजजी कांकरिया बिजोवा, एवं तरुणकुमार विमलचंदजी रांका-सादडी आदि के गृहांगण में पगले हुए । एवं पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ ।

दि. 10 सितम्बर मंगलवार को 8.00 बजे चतुर्विध संघ क साथ पूज्यश्री बाजते-गाजते शा. चम्पालालजी बाफना, जयंतिलालजी, प्रकाशजी, अरुणजी बाफना एवं कांतिलालजी शाह आदि के गृहांगण में पगले करते हुए । पूज्यश्री राजस्थानी संघ भवन पधारे । वहाँ पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । 220 रु. सामूहिक संघ पूजन एवं अल्पाहार रखा गया ।

सामूहिक-क्षमापना

जैन महासंघ की विनंति स्वीकार कर दि. 15 सितंबर रविवार को पूज्य आचार्य भगवंत नेहरु विद्यालय में पधारे । सर्व प्रथम पूज्यश्री के मंगलाचरण बाद मंच संचालक गुलाबचंदजी ने पूज्यश्री का परिचय किया, उसके बाद मासक्षमण, सिद्धितप तथा 11 उपवास के तपस्वियों का बहुमान भी किया गया । पूज्यश्री का 'क्षमा' धर्म पर प्रभावक प्रवचन हुआ ।

दि. 20 सितंबर को सुपार्श्वनाथ नवयुवक मंडल के पच्चीस वर्ष की पूर्णाहूति निमित्त मंडल की ओर से आयोजित त्रिदिवसीय महोत्सव के पहले दिन सुपार्श्वनाथ जिनालय मं अठारह अभिषेक के पावन प्रसंग पर प्रातः 9.30 बजे पूज्य आचार्य भगवंत भी सुपार्श्वनाथ जिनालय पधारे ।

कोजी टॉवर में प्रवचन

दि. 22 सितंबर रविवार को प्रातः 9.15 बजे पूज्य आचार्य भगवंत कोजी टॉवर के जैन बंधुओं की विनती स्वीकार कर वाजते

गाजते कोजी टॉवर पधारे । सुंदर गहुंलियों से पूज्यश्री का स्वागत किया गया । उसके बाद विपीन गुरुजी ने पूज्यश्री के प्रभावक व्यक्तित्व का परिचय दिया । तत्पश्चात् पूज्यश्री का `आहार क्यों और कैसे ?' विषय पर 9.45 से 11.15 बजे तक अत्यंत ही प्रभावक प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने भक्ष्याभक्ष्य का स्वरुप समझाया ।

दि. 25 सितंबर बुधवार को झाबक परिवार द्वारा निर्मित स्तंभन पार्श्वनाथ जिनालय में 108 पार्श्वनाथ महापूजन होने से पूज्य आचार्य भगवंत प्रवचन बाद वहां पधारे !

दि. 29 सितंबर-रविवार के शुभ दिन पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ के साथ वाजते-गाजते **महावीर मे फ्लॉवर** में पधारे । वहां पूज्यश्री का `मन के जीते जीत हैं' विषय पर 1 घंटे तक प्रभावक प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद श्रीमती मोहिनीदेवी शांतिलालजी कांकरिया (दांतराई-राज. निवासी) के गृहांगण में पूज्यश्री के पगले हुए । पगले बाद पूज्यश्री का हितशिक्षा, गुरुपूजन एवं 50 रु. का संघ पूजन हुआ ।

दि. 1 अक्टूबर को प्रातः 9.15 बजे पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ सहित वाजते-गाजते सादडी निवासी शा. महिपालजी चंदनमलजी महेता के गृहांगण में पधारे । वहां 9.30 से 10.30 तक **`परमात्म भक्ति'** विषय पर प्रभावक प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने सरल शैली में प्रभु भक्ति की महिमा समझाई ।

दि. 2 अक्टूबर को प्रातः 9.15 बजे सुरेशजी बाफना एवं घेवरचंदजी नेमिचंदजी तातेड के गृहांगण में पूज्यश्री वाजते गाजते मिलिला एपार्टमेंट में पधारे । वहां पूज्यश्री का **`ईर्ष्या की नागिन से बचें'** विषय पर प्रेरणादायी प्रवचन हुआ ।

नवपद ओली शुभारंभ

दि. 5 अक्टूबर आसो सुदी-7 से नवपद ओली प्रारंभ हुई । दि. 5 से पूज्यश्री के प्रवचन राजस्थानी संघ भवन में चालू है । दि. 5 को प्रवचन दरम्यान **`हेमजीवन'** पुस्तक का विमोचन हुआ और अव्वलपुंदरी छ'री पालक संघ के आवेदन पत्र (फॉर्म) भी वितरित किए गए ।

नवाह्निक-महोत्सव के अन्तर्गत आज प्रातः 7 बजे कुंभ स्थापना आदि हुई) बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय में रमेशजी चांदमलजी बाफना की ओर से 18 अभिषेक हुए । आज संघ में 100 आयंबिल हुए ।

दि. 6 अक्टूबर को 9.15 से 10.30 तक पूज्यश्री के प्रवचन बाद मंदिरजी में नवग्रह, दस दिक्पाल व अष्टमंगल पाटला पूजन पढाया गया । आज 70 आयंबिल हुए ।

दि. 7 अक्टूबर को राजस्थान संघ भवन में प्रवचन बाद बहुफणा जिनालय में शा. पुखराजजी अशोकजी बरडिया-फलोदी की ओर से लघु शांति स्नात्र महापूजन पढाया गया । विधि विधान विपीनगुरुजी ने किए । भक्ति संगीत अंकुश एंड पार्टी ने प्रस्तुत किया !

दि. 8 अक्टूबर आसो सुदी-10 को प्रवचन बाद शा. महावीरजी फूलचंदजी सियाल की ओर से 108 पार्श्वनाथ महापूजन पढाया गया।

दि. 9 अक्टूबर के शुभ दिन पूज्यश्री ने नवपद के अन्तर्गत 'साधु-पद' की महिमा समझाई ।

ठीक 10 बजे ज्ञानदीप प्रज्वलन, सरस्वती-माल्यार्पण के बाद मंच संचालक सुरेशजी गुंदेशा ने **पूज्य आ. श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित **'जैन महाभारत'** पुस्तक का परिचय दिया फिर अनिलजी गेमावत ने गुरु भक्ति प्रस्तुत कर गुरु की महिमा समझाई ।

फिर पुस्तक के लाभार्थी श्रीमती शांतिबाई वनेचंदजी श्रीश्रीमाल तथा अनिलजी गेमावत ने पुस्तक का विमोचन कर उसकी प्रति पूज्यश्री के करकमलों में अर्पित की ।

उसके बाद अनिल गेमावत के भक्ति गीत के बाद मुमुक्षुरत्ना स्वीटीजी नाहर एवं मुमुक्षु रत्ना खुश्बु फूलचंदजी नाहर का बहुफणा पार्श्वनाथ ट्रस्ट की ओर से बहुमान किया गया । प्रवचन के अंत में वनेचंदजी श्रीश्रीमाल की ओर से 50 रु. अनिल गेमावत की ओर से 20 रु. राजेशजी नाहर की ओर से 10 रु. एवं आज के दिन ऋषिमंडल महापूजन के लाभार्थी तीजोबाई मोहनराजजी राठोड की ओर से 10 रु. का संघपूजन किया गया ।

दि. 10 अक्टूबर के शुभ दिन पूज्यश्री का 9.30 बजे प्रभावक प्रवचन हुआ एवं राजस्थानी संघ भवन में श्रुत परिवार की ओर से बीस स्थानक महापूजन पढाया गया ! अनिल गेमावत ने भी पूजन में भक्ति गीत प्रस्तुत किए !

दि. 11 अक्टूबर के दिन पूज्यश्री का **'ज्ञान पद की महिमा'** विषय पर प्रभावक प्रवचन हुआ । ठीक 10 बजे भक्तामर महापूजन बाबुलालजी फतैहचंदजी रांका परिवार की ओर से पढाया गया ।

दि. 12 अक्टूबर को प्रातः 9.15 बजे पूज्यश्री ने प्रवचन दरम्यान चारित्रपद की महिमा एवं छ'री पालक संघ की महिमा समझाई । ठीक 10.15 बजे मुंबई से पधारे अशोकभाई गेमावत ने गुरु भक्ति गीत प्रस्तुत किया उसके बाद बहुफणा पार्श्वनाथ से सर्व सिद्धि पार्श्वनाथ अव्वलपुंदरी के 10 दिवसीय छ'री पालक संघ के लाभार्थी परिवार के बहुमान के चढावे बोले गए ।

तिलक व माला का चढावा 1.81 में महावीर चंदजी सियाल ने लिया । साफा-चुंदडी का चढावा 1.71 में मेहता ब्रदर्स ने तथा श्रीफल-मोमेंटों का चढावा 1.91 में डायालालजी रामसेना ने तथा संघ प्रस्थान की हरी झंडी का चढावा 1.21 में राकेशजी महेता ने लिया ।

महोत्सव के अन्तर्गत आज महेता ब्रदर्स की ओर से श्री सिद्धचक्र महापूजन पढाया गया ।

दि. 13 अक्टूबर आसो सुदी-पूनम शत्रुंजय गिरिराज पर 20 करोड मुनियों के साथ पांच पांडवों के निर्वाण का पवित्र दिन । `प्रातः 9.15 से 12 बजे तक पूज्य आचार्य भगवंत की तारक निश्रा में **राजस्थान निवास** में `शत्रुंजय की भाव यात्रा' का अनुठा, कार्यक्रम उत्साह-उल्लास से संपन्न हुआ । मैसूर से पधारे संगीतकार कुणाल शाह ने भक्ति गीत प्रस्तुत किए तथा पूज्य आचार्य भगवंत ने शत्रुंजय तलेटी से दादा के दरबार तक के मार्ग में आनेवाले विविध जिनालयों आदि का परिचय दिया । आज नवपद ओली के बाल तपस्वी विराज (उम्र 11 वर्ष) तथा मुमुक्षु रक्षिता राजकुमारजी का संघ की ओर से बहुमान किया गया । अंत

में कार्यक्रम के लाभार्थी दिनेशजी हनुमंतजी बागरेचा की ओर से 50 रु. का संघ पूजन हुआ । इस भाव यात्रा में 350 लोगों की उपस्थिति रही ।

दि. 14 अक्टूबर को प्रातः 8 बजे राजस्थानी संघ भवन में वर्धमान तप एवं नवपद ओली के तपस्वियों का पारणा रमेशजी बाफना परिवार की ओर से हुए । इस ओली में लगभग 78 आराधक जुडे !

दि. 15 अक्टूबर को प्रवचन के बाद बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर बेंगलोर से पधारी मुमुक्षुरत्ना पूनमबहन C.A. का बहुमान किया गया ।

दो वर्ष पूर्व सुशीलधाम-बेंगलोर में आयोजित महा मंगलकारी उपधान तप में आराधक के रुप में जुडी पूनम ने **पूज्य आचार्य श्री रत्नसेनसूरिजी म.** के उपदेश एवं **पू.सा. श्री मयणाश्रीजी** के सत्संग के प्रभाव से संयम पथ की ओर जाने का मन बनाया । माता-पिता की सम्मति प्राप्त कर दि. 1-2-2020 के शुभ दिन सूरत में भागवती दीक्षा अंगीकार करेगी ।

पूज्यश्री ने मुमुक्षु को भी हितशिक्षा प्रदान की । मुमुक्षु ने भी पूज्यश्री के उपकार को याद कर कृतज्ञता व्यक्त की ।

दि. 17 अक्टूबर को 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद ओसवाल जैन संघ-बाली के ट्रस्ट मंडल ने पूज्यश्री को सन् 2021 के बाली चातुर्मास हेतु विनती की । संघ के अध्यक्ष बाबुलालजी मंडलेचा एवं सज्जनभाई रांका ने पूज्य आचार्य भगवंत की गुण गरिमा का परिचय दिया । पूज्यश्री की हिन्दी साहित्य साधना, सरलता, निःस्पृहता, प्रभावक प्रवचनशैली आदि गुणों की अनुमोदना की । रमेशभाई बाफना ने बाली ट्रस्ट मंडल का बहुमान किया ।

दि. 20 अक्टूबर रविवार को प्रातः 9.15 बजे पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ के बाजते गाजते शा. मगराजजी कांतिलालजी एवं महावीरजी बाफना (मांडावास-पालीवाले) के गृहांगण में पधारे, वहां पूज्यश्री का **'माया छोडे-सरल बने'** इस विषय पर अत्यंत ही प्रेरणादायी प्रवचन हुआ ।

दि. 21 अक्टूबर को मरुधररत्न पू.आचार्य भगवंत के दीक्षा दाता प.पू.वर्धमान तपोनिधि पंन्यासश्री हर्षविजयजी की 40 वीं पुण्यतिथि निमित्त प्रातः 9.15 बजे गुणानुवाद सभा रखी गई । संचालन गुलाबचंदजी ने किया । पूज्यश्री ने उपने उपकारी पंन्यासजी म. का विस्तृत परिचय दिया । प्रवचन बाद 60 रु. का संघ पूजन व पूज्यश्री के उपदेश से 50 आयंबिल व सभी को दाखोबाई चांदमलजी परिवार की ओर से 50 रु. की प्रभावना दी गई ।

आज से पूज्यश्री के भगवान महावीर की अंतिम देशना `उत्तराध्ययन सूत्र' पर प्रवचन प्रारंभ हुए ।

दीक्षार्थी बहुमान

दि. 23 अक्टूबर को प्रातः 9.30 से 10.30 बजे तक पूज्यश्री का **`उत्तराध्ययन सूत्र'** 2,3 व 4 थे अध्ययन पर प्रवचन हुआ, उसके बाद 6 दीक्षार्थियों का बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से बहुमान किया गया ।

64 वर्षीय मुमुक्षु रमेशभाई ने कहा, `मेरे जीवन में पूज्य आचार्य **श्री रत्नसेनसूरीश्वजी म.सा.** का खूब उपकार है । मैं पूज्यश्री से 23 वर्ष से परिचय में हूँ । पूज्यश्री की निश्रा में ही सर्व प्रथम नवपद ओली, अढारिया उपधान एवं गिरनार तीर्थ में नेमिनाथ प्रभु समक्ष ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार किया था । आराधना में आगे बढने में उनकी खूब प्रेरणा रही, भयंकर बिमारी में समाधि हेतु भी प्रेरणा रही, इसके साथ ही अन्य गुरु भगवंतों का भी खूब उपकार रहा है ।'

तत्पश्चात् रमेशभाई बाफना ने मुमुक्षु रमेशभाई C.A., चिंतन, आदित्य तथा कलश बागरेचा तथा मुमुक्षु रत्ना वीणा तथा महिमा बागरेचा आदि का बहुमान किया गया । उसके बाद ममुक्षु की धर्मपत्नी रतनबेन तथा माता-पिता दिनेशभाई-अशोकभाई आदि का भी बहुमान किया गया । मुंबई से पधारे संघवी संपतराजजी तथा उनकी धर्मपत्नी पिश्ताबाई का भी बहुमान किया गया । पूज्यश्री के सदुपदेश से वीर प्रभु के निर्वाण निमित्त दि. 26 व 27 अक्टूबर कार्तिक वदी 13 तथा 14 के शुभ दिन

संघ में 60 लगभग आराधकों के छट्ठ तप किया । चतुर्दशी के दिन पूज्यश्री ने पुण्यपाल राजा को आप स्वप्नों का फलादेश समझाया । रात्रि में 11 भाइयों ने पौषध किया । रात्रि में 3 बजे प्रभु वीर एवं गौतमस्वामीजी के देववंदन भी हुए ।

दि. 28 को छट्ठ तप तपस्वियों के पारणे हुए ।

नूतन वर्ष का मंगल प्रारंभ

कार्तिक सुदी-2 दि. 29 अक्टूबर को प्रातः जिनालय द्वारोद्घाटन बाद ठीक 6.30 बजे राज स्थान संघ निवास में नूतन वर्ष 2076 एवं वीर संवत् 2546 के शुभारंभ निमित्त नवस्मरण व गौतमस्वामी के रास द्वारा पूज्यश्रीने मांगलिक सुनाया । पूज्यश्री ने गौतम स्वामीजी के जीवन का विस्तृत परिचय भी दिया ।

संघ पत्रिका आलेखन

कार्तिक सुदी-3 दि. 30 अक्टूबर बुधवार को प्रातः 9.30 बजे पूज्यश्री की निश्रा में राजस्थान निवास में छ'री पालक संघ पत्रिका लेखन का कार्यक्रम बहुत ही उत्साह उल्लास से संपन्न हुआ । सुपार्श्व संगीत मंडल ने भक्ति गीत प्रस्तुत किए । सभा का संचालन सुरेशभाई गुंदेशा ने किया । पूज्यश्री ने संघ में जुडने के लिए सुंदर प्रेरणा दी ।

दि. 3 नवंबर रविवार को प्रातः 9 बजे वाजते-गाजते संघ सहित पूज्यश्री राकेशजी उमेदमलजी (जोधपूर) के गृहांगण में पधारे । वहां शांतिसूरि मंडल ने गुरु भक्ति गीत प्रस्तुत किए सभा का संचालन महावीरभाई ने किया । पूज्यश्री द्वारा आलेखित श्राद्धविधि हिन्दी अनुवाद **श्रावक जीवन दर्शन** का विमोचन उत्तमजी, गणपतजी, राकेशजी महेता आदि ने किया ।

उसके बाद पूज्य आचार्य भागवंत का श्रावक की आचार संहिता पर प्रेरणादायी प्रवचन हुआ प्रवचन बाद उनके गृहांगण में पगले एवं प्रभावना हुई ।

श्री बहुफणा पार्श्वनाथ कोयम्बतूर से श्री सर्वसिद्धि पार्श्वनाथ अव्वलपुंदरी तक छ'री पालक यात्रा संघ

पावन निश्रा

मरुधर रत्न, गोड़वाड़ के गौरव, हिन्दी साहित्यकार पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसनेसूरीश्वरजी म.सा.** आदि ठाणा-5

इस तीर्थ पर प्रथम बार विशाल प्रमाण में **छ'री पालक संघ** का आगमन हो रहा है ।

संघ प्रयाण

मगसर सुद-9, दि. 5-12-2019, गुरुवार

संघ पूर्णाहूति

पोष वदी-2, दि. 14-12-2019, शनिवार

श्री छ'रीपालक संघ के लाभार्थी परिवार

1. **रमेशकुमारजी चांदमलजी बाफना (सादड़ी)**
2. **शा. मीठालालजी मनोहरमलजी (दादाल)**
3. **श्रीमती लीलाबाई चंदनमलजी महेता (सादड़ी)**
4. **श्रीमती सुन्दरबाई सुकनराजजी राठोड़ (सादड़ी)**
5. **नैनीबाई फतेहचंदजी सुंदेशा (सादड़ी)**
6. **श्रीमती शांतिबाई गम्भीरमलजी बाफना (सादड़ी)**
7. **शा. डायालालजी मंछालालजी रामसीन (रामसीणा)**
8. **श्रीमती पंकुबाई खेमचन्दजी चौहान (दांतराई)**
9. **श्रीमती तीजोबाई मोहनराजजी राठोड़ (सादड़ी)**
10. **श्रीमती ऊकीदेवी मीठालालजी ओबानी (पोसाना)**
11. **मांगीलालजी लक्ष्मीचंदजी परमार (बाली)**
12. **गौतमजी रुपचंदजी कोठारी (मोकलसर)**

13. विजयकुमारजी बाबुलालजी रांका (सादड़ी)
14. जयवन्तकुमारजी बाबुलालजी बाफना मांडावास (पाली)
15. शा. सुखराजजी चम्पालालजी बाफना मांडावास (पाली)
16. सुरेशकुमारजी साकलचंदजी खिवंसरा (चडुवाल)
17. श्रीमती अंशीबाई भंवरलालजी बाफना (मांडावास)
18. गौतमजी फूलचंदजी सियाल (भिमालीया)
19. अम्बालाल डी. शाह (कालन्द्री)
20. विमलचन्दजी फतेहचंदजी रांका (सादड़ी)
21. श्रीमती कमलाबाई लालचन्दजी बाफना (जोधपुर)
22. राकेशजी उम्मेदमल शा महेता (जोधपुर)
23. महावीरचंदजी फूलचंदजी सियाल (भिमालीया)
24. दीपककुमारजी कपुरचंदजी बम्बोली(सादड़ी)
25. श्रीमती कमलाबाई बाबुलालजी शा (आबू रोड)
26. भेरूलालजी नगराजजी महेता (सादड़ी)
27. महेन्द्रकुमारजी बालकचंदजी श्रीश्रीमाल (कानाना)

जय जिनेन्द्र : शा. नवलमलनी कस्तुरचंदजी गुंदेशा, (मांडोली)

अव्वलपुंदरी तीर्थ की यशो गाथा

भारतवर्ष के अजरामर दक्षिण के इतिहास में जैनधर्म का अत्यन्त प्रभावशाली क्षेत्र तामिलनाडु ही रहा है। कलिंग क्षेत्र में परमात्मा महावीर की विहार भूमि का उल्लेख आगमों में उपलब्ध होता है। परमात्मा के विहार व विचरण क्षेत्र तोसली, मोसली, तेलगु व तमिलनाडु के तटीय क्षेत्र मुख्यतः रहे है। दक्षिण प्रान्त में जैनधर्म ने चरमोत्कर्ष का स्पर्श किया था। आचार्य भद्रबाहु स्वामी ने दक्षिण प्रान्तों में विहार यात्रा द्वारा जन समुदाय में जैन धर्म का संवर्धन किया। ऑरकाट, पेदमीरम्, गुडीवाड़ा, जिनकांची, गुम्मीलेरू, मदुरै, कुलपाकजी के जैन मंदिर इस बात के प्रमाण है। तमिलनाडु, आंध्रप्रदेश, कर्नाटक आदि प्रान्तों में जैन

धर्म का पर्याप्त विकास हुआ । प्राचीन जैन मंदिर आज भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते है ।

तमिलनाडु प्रांत में 5वीं सदी से कई महान आचार्यों ने धर्मप्रभावना की जैसे चतुर्दश पूर्वधर भद्रबाहुस्वामी, आचार्य श्री वज्रस्वामी, आचार्य देवनंदी, सिद्धनागर्जुनादि का यह मुख्य विहार क्षेत्र रहा है । ईरोड़ शहर पर सदीयों पूर्व से चोल, पांड्य दिल्ली सल्तनत, विजयनगर साम्राज्य, मदुरै नायक, दैदर आली, टीपू सुल्तान, ब्रिटिश इस्ट इंडिया कम्पनी, मैसुर महाराजा आदि ने शासन किया है । नगर का वातावरण अति शांत एवं सुरम्य होने से मनमोहक है । इस नगर में कई बार जैन धर्म के प्राचीन अवशेष एवं प्रतिमाएँ मिलती रहती है, उससे लगता है कि यहाँ पर पूर्व में जैन धर्म का अति प्रभाव व वर्चस्व रहा होगा ।

विशेष लिखते हुए परम हर्ष हो रहा है कि 45वर्ष पूर्व अव्वलपुंदरी ग्राम में 1000 वर्ष प्राचीन श्यामवर्णी पविकर युक्त श्री सर्व सिद्धि पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा बिराजमान होने की जानकारी मिली । ईरोड़ एवं आसपास से हजारों पार्श्व भक्त अव्वलपुंदरी ग्राम पहुंचे । प्रभु की प्राचीन प्रतिमा देखकर सर्व के मन में आनंद छाया एवं तभी से श्री जैन श्वे. संघ ईरोड़ इस मंदिर की व्यवस्था को देखते आ रहा है । ग्रामवासियों की अटूट श्रद्धा परमात्मा के प्रति होने से प्रतिमाजी को उसी स्थान पर रखकर सेवा-पूजा प्रारम्भ की । इस तीर्थ पर समय समय पर अनेक आचार्य भगवन्त सह साधु साध्वीगण पधारे । भक्ति कला-साधना के अनूठे अनुपम त्रिवेणी संगम स्वरूप .यह महातीर्थ जिनशासन की ऐतिहासिक धरोहर हैं ।

वि.सं. 2076 कार्तिक सुदी-8 दि. 4 नवंबर के शुभदिन प्रातः 9 बजे राजस्थान निवास में पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. की शुभ निश्रा में अतीत भव के पुद्गल वोसिराने एवं बारहव्रत उच्चरने की क्रिया नाण समक्ष खूब उत्साह से संपन्न हुई । इस मंगल क्रिया में लगभग 80 आराधक जुडे ।

गृह जिनालय प्रतिष्ठा

कार्तिक सुद-10, वि.सं. 2076, दि. 7-10-2019 को राजगुरु एपार्टमेंट की 8 वीं मंजिल में शा. दिनेशभाई मनोहर मलजी झोटा (दादाल निवासी) के गृहांगण में श्री श्रेयांसनाथ प्रभु की प्रतिष्ठा- विधि सानंद संपन्न हुई । प्रातः 9 बजे तेरापंथी भवन से राजगुरु एपा. तक प्रभुजी का वरघोडा निकला फिर पूज्यश्री तारक निश्रा में प्रातः 10.36 से 10.48 के बीच शुभ मुहुर्त में प्रभुजी की प्रतिष्ठा विधि संपन्न हुई । विधि-विधान हेतु बेंगलोर से रोहित गुरुजी पधारे थे । प्रतिष्ठा बाद पूज्यश्री का हित शिक्षा प्रवचन एवं नूतन गृह जिनालय में प्रभुजी के 18 अभिषेक हुए । झोटा परिवार की ओर से तेरापंथ भवन में seating से ससन्मान साधर्मिक भक्ति भी हुई ।

आचारांग-सूत्र अनुज्ञा

पर्युषण बाद भादो सुद-10 से पू.मु. श्री स्थूलभद्रविजयजी म. के आचारांग सूत्र के योगोद्वहन प्रारंभ हुए । दि. 8 अक्टूबर कार्तिक सुद-11 के शुभ दिन आचारांग सूत्र की अनुज्ञा विधि संपन्न हुई ।

दि. 10 अक्टूबर रविवार के शुभ दिन पूज्य आचार्य भगवंत चतुर्विध संघ के साथ वाजते-गाजते प्रातः 9.30 बजे शा. सुमेरमलजी बाफना के गृहांगण में पगले कर शा. चंपालालजी सुखराजजी के गृहांगण में पगले हेतु पधारे एवं प्रातः 10 से 11 तक 'तीर्थ यात्रा क्यों और कैसे ?' विषय पर पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन हुआ ।

दि. 11 अक्टूबर को चातुर्मास पूर्णाहूति निमित्त प्रातः 9.30 बजे पूज्यश्री का प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने चातुर्मास की महिमा समझाई । जाने-अनजाने में हुई अपनी भूलों लिए क्षमायाचना की । संघ की ओर विकासभाई तथा रमेशजी बाफना ने भी क्षमायाचना की । दोपहर में सामूहिक देववंदन व शाम को चौमासी प्रतिक्रमण हुआ ।

शत्रुंजय पट्ट दर्शन एवं चातुर्मास परिवर्तन

चातुर्मास परिवर्तन हेतु पूज्य आचार्य भगवंत ने सादडी निवासी दीपकभाई कपूरचंदजी बंबोली की विनती स्वीकार की थी । कार्तिक पूनम दि. 12-11-2019 के मंगल प्रभात में प्रातः 6.30 बजे चतुर्विध संघ के साथ बाजते-गाजते पूज्यश्री ने जैन मैनोर से प्रस्थान किया । बीच में शंखेश्वर जिनालय एवं मदनजी बाफना के गृहांगण में शत्रुंजय पट्टदर्शन कर आर.जी. स्ट्रीट में दीपकभाई के गृहांगण में शत्रुंजय पट्ट दर्शन कर आर.जी. स्ट्रीट में दीपकभाई के गृहांगण में स्वागत सह पधारे फिर शत्रुंजय पट्टदर्शन 21 खमासमणे के बाद पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ उसके बाद सकल संघ की नवकारी दीपकभाई की ओर से रखी गई ।

चातुर्मास विदाई समारोह

दि. 17 नवंबर रविवार के शुभ दिन प्रातः 9.30 से 2 बजे तक मरुधर रत्न पू.आचार्य देव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का विदाई समारोह बडे उत्साह-उल्लास के साथ संपन्न हुआ ।

समग्र प्रोग्राम का सफल संचालन गुलाबचंदजी महेता ने किया । पूज्यश्री के मंगलाचरण के बाद गुलाबजी महेता ने कहा कि कोयम्बतूर के इतिहास में यह चातुर्मास स्वर्णाक्षरों से लिखा जाएगा । हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में आचार्यश्री को हमेंशा याद किया जाएगा । उनके प्रवचन की धारा हमें आत्म मंथन के लिए मजबूर करती है । शिबिर दरम्यान 2-2 घंटे तक एक ही विषय पर वे धाराबद्ध बोलते है, जहां कहीं भी विषयांतर नहीं होता है । उनके उपदेश से अनेकों के जीवन में बदलाव आया है ।

1. चातुर्मास के प्रारंभ में कई प्रश्न खडे थे परंतु आज चातुर्मास की यशस्वी पूर्णाहूति को देखते है, तो हृदय आनंद से भर आता है । पूज्यश्री की प्रेरणा से 22 श्रावकों ने केश लोच भी कराए है । दक्षिण भारत के सभी चातुर्मास बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बतूर यशस्वी हुए है । सिर्फ 3-4 दिन में 10 दिवसीय संघ का निर्णय होना यह भी उनके प्रबल पुण्य को आभारी है ।

2. मगराज बाफना ने कहा, `10 जुन से पूज्यश्री की प्रवचन धारा बह रही है । तत्त्वज्ञान को केन्द्रित कर के उनके प्रवचन खूब प्रभावशाली रहे है । पूज्यश्री समय के खूब पाबंदी है । उनकी संयम आराधना निरंतर गतिमान रहे, यही प्रभु से प्रार्थना है ।

3. अंबालालजी डी. शाह ने कहा, `पूज्यश्री के प्रवचनों में आत्म जागृति का संदेश रहा होता है । सादा जीवन-उच्च विचार यह उनका जीवन मंत्र है । वे हमेशा ज्ञान साधना में मस्त रहते है ।

4. कुमारी रक्षिता ने **'गुरुवर का आना सुहाना लगता है'** गीत प्रस्तुत किया ।

5. सुप्रसिद्ध गायक अशोकजी गेमावत ने **'जय भद्रंकर'** गीत प्रस्तुत कर सभी को गुरु भक्ति के रंग में रंग डाला ।

6. **'गौतमजी बी. बाफना** ने कहा,' पूज्यश्री के दैनिक सत्संग से मेरे जीवन में खूब बदलाव आया है । मैंने केश लोच कराया तथा एकासने भी किए । स्वाध्याय में भी आगे बढने की प्रेरणा मिली । पूज्यश्री ने मेरे कई प्रश्नों के समाधान किए । वे सदैव प्रसन्न रहते है ।'

7. **अक्षित महेता** ने कहा, `यह चातुर्मास मेरे लिए खूब लाभदायी रहा । आचार्यश्री के प्रवचनों से प्रभु के मार्ग की श्रद्धा दृढ बनी है । संयम न ले सका परंतु **'संयम ही लेने जैसा है'**, यह भाव दृढ बना है । पू. मु. श्री प्रशांतरत्नविजयजी म. ने सूत्रों के अर्थ सिखाने में खूब श्रम लिया है ।

अशोक गेमावत ने पुनः एक सुंदर भक्ति गीत प्रस्तुत किया ।

8. **सिद्ध कुणालजी शाह** (उम्र 5 वर्ष) ने कहा, `चातुर्मास में मैंने लघु शांति, बडी शांति, स्नातस्या का अभ्यास किया । अब मैं sad हूं क्योंकि मुझे गाथा कौन सिखाएगा ?'

9. **प्रवीणभाई चौहान** ने कहा, `कोयम्बूतर आगमन के पूर्व पू. आचार्य म.सा. ने मेरा कोई परिचय नहीं था । पूज्यश्री सदैव प्रसन्न एवं positive विचार वाले है । छ'री पालक संघ के बारे में मुझे कई negative विचार थे' परंतु पूज्यश्री के पुण्य प्रभाव से सब अनुकूल हो गया ।'

10. **विकास वैद** ने अपने वक्तव्य में सभी महात्माओं की विशेषताएं बताते हुए विस्तार से वर्णन किया `पूज्यश्री के प्रभाव से ही मुझे बोलने की हिम्मत आई है । वे 43 वर्षों से नियमित एकासना व सुदी पंचमी का उपवास करते है ।' इस बार मेरे सूत्रों का शुद्धिकरण भी हुआ ।

11. भविष्य अंबानी ने ***'सुना है आंगन सुना है मन'*** भक्ति गीत सुनाया ।

12. विराज जैन ने ***'गुरुदया करके'*** गीत सुनाया ।

13. **सुरेशजी गुंदेशा** ने कहा, `पूज्यश्री के उपदेश से मैंने बहुत कुछ सीखा है और मुझ में बदलाव आया है । पूज्यश्री का साहित्य भी खूब पठनीय है ।

14. **मदनजी बाफना** ने कहा, पूज्यश्री के उपदेश से मैंने बहुत कुछ सीखा है । गुरुकी स्तवना प्रत्यक्ष करनी चाहिए ।'

15. **मोतीलालजी राठोड** ने कहा, `पूज्य आचार्यश्री के सदुपदेश से साधर्मिक भक्ति के रुप में सभी को बैठकर, ससन्मान भोजन कराया । **कभी भी भोजन में बुफे नहीं रहा ।'**

16. **प्रकाशजी कोठारी** ने कहा, `मेरे सद्भाग्य से मुझे भी ऐसे महान् आचार्यश्री के चातुर्मास दरम्यान यतकिंचित् सेवा करने का मौका मिला । कविता के माध्यम से क्षमायाचना करते हुए कहा,

`माटी का पुतला हूँ मैं, नहीं पल का ठिकाना,
माया जाल के अंधकार में, दीपक मुझे जलाना ।
भूल होना स्वाभाविक हैं, क्योंकि मैं मानव दिवाना,
भूल अगर मुझ से हुई हो, तो दिल से उसे भूलाना,
हाथ जोडकर करुं मैं विनंति, माफ मुझे कर देना,
विदाई की इस वेला में, क्षमा मुझे कर देना ।

17. **जयंतिलालजी बाफना** ने अपने परिवार की ओर से रमेशजी बाफना को अभिनंदन पत्र अर्पित किया और उनकी सेवाओं की अनुमोदना की ।

18. **अमन बाफना** ने कहा, `मैंने कभी उपवास नहीं किया, गुरुकृपा से अट्ठाई हो गई । गुरुवरों से मैंने अजित शांति, बडी शांति, अतिचार आदि भी सीखे ।

19. **जितेन्द्र जैन** भिलाड ने कहा, `मेरी संयम की कामना गुरु कृपा से शीघ्र पूर्ण हो, यही प्रार्थना करता हूँ ।

20. **अशोकजी महेता** ने कहा, `चातुर्मास से रमेशजी बाफना के जीवन में बहुत कुछ बदलाव आया है ।'

21. **ऋषभ व रिहान** ने कहा, `मैंने पूज्यश्री की प्रेरणा से एकासना, आयंबिल भी किया । विदाई देने का मन नहीं होता, गुरुवर ! कृपाकर पुनः पधारना ।

22. **सुरेन्द्रजी बाफना** ने कहा, `चातुर्मास से मेरे जीवन में स्थिरता आई हैं, चंचलता दूर हुई है ।

अंत में फलोदी निवासी अशोकजी गुलेछा ने भी गुरुदेव के गुणों की अनुमोदना की ।

इस प्रकार अनेक वक्ताओं ने अपने हृदय के उद्‌गार प्रकट किए । अंत में **रमेशजी बाफना** ने कहा, `बहुफणा पार्श्वनाथ ट्रस्ट के तत्त्वावधान में यह प्रथम बार ही चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । पूज्य आचार्य भगवंत से व्यक्तिगत परिचय न होने पर भी उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर चातुर्मास कराने का संकल्प किया । देव-गुरु की असीम कृपा से यह चातुर्मास खूब यशस्वी बना । जाने अनजाने में हुई भूलों के लिए क्षमा याचना करता हूँ ।'

उसके बाद अशोक गेमावत ने श्रीमती दाखोबाई चांदमलजी के जीवन में हुई विविध तपश्चर्याओं का जिक्र किया और परिवार की ओर से हुए अनेक विध सुकृतों का निर्देश किया । बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय की प्रतिष्ठा समय दाखोंबाई की भावना थी कि पूज्य गुरु भगवंत का चातुर्मास करवाना । उनकी उपस्थिति में तो वह भावना पूर्ण न हो पाई परंतु 23 वर्षों के बाद उनके सुपुत्र रमेशजी बाफना ने अपनी माँ की भावना पूर्ण की है ।

उसके बाद आर.एस.पुरम् के सभी आराधकों की ओर से रमेशजी बाफना एवं उनके परिवार का तिलक, माला, शॉल व श्रीफल द्वारा बहुमान किया गया एवं संघ की ओर से तथा जयंतिलालजी बाफना परिवार की ओर से उन्हें अभिनंदन पत्र भेंट दिया गया ।

उसके बाद चातुर्मास दरम्यान हुई जीवदया की टीप में से 5 लाख रुपए भगवान महावीर गौशाला को भेंट दिए गए ।

अंत में पूज्य आचार्य भगवंत का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । पूज्यश्री ने अपने प्रवचन में चातुर्मास की सफलता का आधार बताते हुए कहा कि सद्गुरु के योग से अपने जीवन में स्थायी परिवर्तन आना चाहिए । पानी बर्फ बनता हैं परंतु बर्फ पुनः पानी हो जाता है । दूध दही बनता है परंतु दही बनने के बाद वह कभी दूध नहीं बनता है । दूध से दही की तरह ही जीवन परिवर्तन होना चाहिए ।

ठीक 2 बजे कार्यक्रम पूर्ण हुआ । फिर सकल संघ का स्वामी वात्सल्य शा. रमेशजी बाफना परिवार की ओर से संपन्न हुआ ।

रात्रि में 8 से 10.30 बजे तक राजस्थान संघ भवन में प्रभु भक्ति एवं चातुर्मास को सफल बनाने में सहयोग देनेवाले विविध मंडलों एवं कार्यकर्ताओं का अभिनंदन पत्र एवं चांदी के 20 gms. के सिक्के द्वारा बहुमान भी किया गया ।

चातुर्मास के बाद प्रथम विहार-चैत्य परिपाटी

चातुर्मास की पूर्णाहूति के बाद दि. 18 नवंबर मगसिर वदी-6, मंगलवार के शुभभदिन पूज्य आचार्य भगवंत के विहार का मुहूर्त होने से उसके साथ मुनिसुव्रतस्वामी साईबाबा कॉलोनी चैत्य परिपाटी का भी आयोजन किया गया, जिसका संपूर्ण लाभ शा. इंदरचंदजी गणपतराजजी महेता जालोर निवासी ने लिया ।

ठीक प्रातः 6.30 बजे चतुर्विध संघ के साथ वाजते गाजते पूज्यश्री का विहार प्रारंभ हुआ । ठीक 7.30 बजे मुनिसुव्रतस्वामी । जिनालय में दर्शन बाद प्रवचन हॉल में पूज्यश्री का प्रेरणादायी प्रवचन हुआ । आज पू. प्रेमसूरिजी म.सा. की दीक्षा तिथि होने से पूज्यश्री ने उनके त्याग-

तपोमय जीवन पर भी प्रकाश डाला । प्रवचन बाद सिटिंग से अल्पाहार भक्ति भी रखी गई । वहाँ से पूज्यश्री वाजते गाजते इंदरचंदजी के गृहांगण में पधारे और वहीं पर पूज्यश्री की स्थिरता रही ।

दूसरे दिन दि. 19 नवंबर को 9.15 बजे के.डी.ओ. हॉल में पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन व संघ पूजन हुआ । शाम को पूज्यश्री विहार कर बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय पधारे ।

दि. 21 नवंबर गुरुवार को पूज्यश्री प्रातः 9 बजे वाजते गाजते शा. विजयराजजी वैद फलोदी के गृहांगण में पधारे । वहीं पर पूज्यश्री का **'मानवता के दीप जलाएं'** विषय पर प्रभावक प्रवचन हुआ । प्रवचन बाद संघ पूजन हुआ । उसके बाद शा. रमेशजी पोरवाल एवं रीखबजी पारेख फलोदी के गृहांगण में भी पूज्यश्री के पगले व संघपूजन हुआ ।

दि. 24 नवंबर रविवार को प्रातः 8 बजे चतुर्विध संघ के साथ गौतमजी शाह के वहां पधारे । 8.15 से 9.15 बजे तक **'वस्तुपाल की तीन प्रार्थनाएं'** विषय पर पूज्यश्री का प्रभावक प्रवचन संघ पूजन हुआ ।

दि. 25 नवंबर सोमवार को प्रातः 9 बजे पूज्यश्री वाजते गाजते शा. महेशजी प्रशांतकुमारजी महेता (बाली निवासी) के गृहांगण में आर.जी. स्ट्रीट पधारे वहां पूज्यश्री का **'समझदार कौन ?'** विषय पर प्रभावक प्रवचन एवं 50 पूजन हुआ ।

दि. 26 नवंबर को प्रातः 9.30 बजे प्रवचन बाद हॉल मदुराई निवासी मुमुक्षु रत्ना हेमकुमारी देवेन्द्रजी का बहुमान बहुफणा पार्श्वनाथ ट्रस्ट की ओर से किया गया । मुमुक्षु की दीक्षा 26 फरवरी को रुणी तीर्थ में होगी ।

दि. 29 नवंबर मगसिर सुदी-3 के शुभ दिन पूज्य आचार्य भगवंत की निश्रा में बहुफणा पार्श्वनाथ जिनालय की 24 वीं ध्वजारोहण का कार्यक्रम उत्साह उल्लास से संपन्न हुआ ।

दि. 1 दिसंबर रविवार के शुभ दिन प्रातः 9.15 बजे वाजते गाजते पूज्यश्री चतुर्विध संघ के साथ 'खरतरगच्छ संघ भवन' में पधारे । वहां पूज्यश्री का **'सच्चे सुख की पहिचान'** विषय पर प्रेरणादायी प्रवचन हुआ प्रवचन बाद 20 रु. का संघ पूजन हुआ ।

तीर्थ के आलंबन से मोक्ष में जाती हैं आत्माएं

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

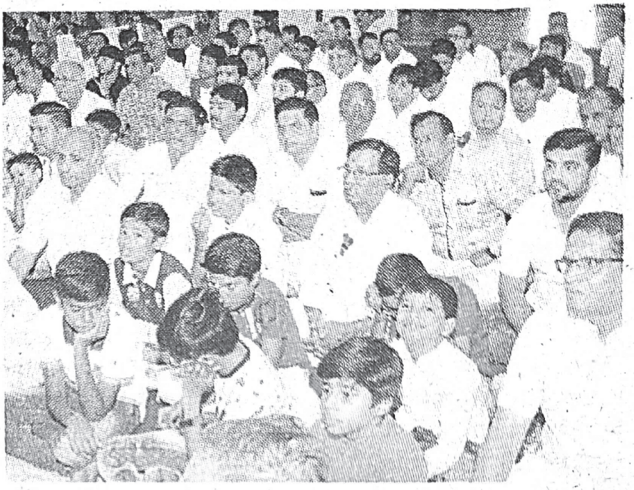

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि पृथ्वी पर तीर्थंकर परमात्मा का अस्तित्व अल्पकाल के लिए होता है लेकिन उनके आलंबन से आत्म कल्याण कर मोक्ष में जाने वाली आत्माओं की संख्या कहीं अधिक होती है। तीर्थ के आलंबन से आत्माएं मोक्ष में जाती हैं। तीर्थ का आलंबन सदा के लिए होता है।

आचार्य ने सोमवार को राजस्थानी संघ भवन में चल रहे चातुर्मास के दौरान धर्मसभा में यह बात कही।

उन्होंने कहा कि सौराष्ट्र की भूमि पर शत्रुंजय व गिरनार तीर्थ महत्वपूर्ण है। यहां के स्पर्श मात्र से आत्माएं मोक्ष में गई हैं। 24 तीर्थंकरों के अधिकांश कल्याणक पूर्वोत्तर भाग में हुए हैं। 22 वें तीर्थंकर नेमीनाथ के दीक्षा, केवल ज्ञान व निर्वाण कल्याणक गिरनार तीर्थ पर गए।

उन्होंने कहा कि तीर्थंकरों के जन्म आदि प्रसंगों से उनकी आराधना का आलंबन होता है। हमारा जन्म तो अधोपतन व संसार वृद्धि के लिए है। जबकि तीर्थंकरों का जन्म उनके जन्म का अंत करने वाला अर्थात उनकी आराधना से जन्मों का अंत हो जाता है। उन्होंने कहा कि नेमीनाथ भगवान की आत्मा ने पर्व के के नवें भव में धन कुमार की अवस्था में साधु की सेवा कर सम्यक दर्शन प्राप्त किया। तीसरे भव में शंख चक्रवर्ती की अवस्था में संयम जीवन स्वीकार किया। संयम की कठोर साधना के साथ अरिहंत आदि 20 स्थानकों की आदि की आराधना कर तीर्थंकरों का बंध किया।

उन्होंने बताया कि वहां से अपराजित देव विमान से निर्लेप भाव से व्यतीत कर शौरीपुरी के राजा समुद्र विजय की रानी शिवा देवी के यहां अवतरित हुए।

तब प्रभु की माता ने 14 महास्वपन के दर्शन किए। श्रावण मास की पंचमी को 22 वें तीर्थंकर नेमीनाथ का जन्म हुआ। प्रभु के जन्म पर इंद्र ने मेरु पर्वत पर व पिता समुद्र विजय ने नगर में प्रभु का जन्मोत्सव में मनाया था।

उन्होंने बताया कि अंतिम जन्म में 300 वर्ष संसार में बिताए गिरनार तीर्थ भूमि पर1000 राजकुमारों के साथ संयम व्रत स्वीकार किया। 54 दिनों बाद केवल ज्ञान प्राप्त कर 700 वर्ष तक जीवों को बोध देकर गिरनार की भूमि पर मोक्ष प्राप्त किया। 24 वें तीर्थंकरों में से आठ तीर्थंकरों के दीक्षा, केवल ज्ञान, मोक्ष व दो तीर्थंरों के मोक्ष कल्याणक भी यहीं हुए। आगे के तीर्थंकरों का भी मोक्ष कल्याणक भी यहीं होगा। तीर्थ के मूलनायक नेमीनाथ प्रभु की प्रतिमा 1, 65, 735 वर्ष न्यून 20 कोडाकोडी सागररोपम वर्ष पुराना है। सोमवार को नमीनाथ भगवान के जन्म कल्याणक निमित्त भाववाही स्तुतियों के माध्यम से शाश्वत तीर्थ गिरनार व नेमीनाथ तीर्थ की भावयात्रा का संगीतमय कार्यक्रम का आयोजन किया गया।

सरल स्वभाव वाला सर्वत्र आदरणीय

कोयम्बत्तूर, कई लीटर दूध में जहर की एक बूंद गिर जाती है तो वह दूध नहीं रहता बल्कि जहर बन जाता है। दूध पुष्टि का और जहर मारने का कार्य करता है।

जहर की एक बूंद दूध की पौष्टिकता को खत्म कर देती है। इसी प्रकार गुण कितने ही हो लेकिन स्वभाव अच्छा नहीं होगा तो सारे गुणों पर पानी फिर जाता है।

यह बात जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कही। वे मंगलवार को बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से जैन उपाश्रय में धर्मसभा को संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा जिसका स्वभाव अच्छा है । वह सर्वत्र आदरणीय है लेकिन जिसका स्वभाव अच्छा नहीं है उसके जीवन में दया, दान, परोपकार, उदारता गुण हो फिर भी वह अपने स्वभाव के कारण सब कुछ खो बैठता है। स्वभाव को बदलना बहुत बड़ी बात है। विचित्र स्वभाव से बात व वातावरण दोनों बिगड़ते रहते हैं। स्वयं के खराब स्वभाव का पता ही नहीं चलता। मनुष्य स्वयं के स्वभाव को अच्छा ही मानता रहता है। सामने वाले व्यक्ति के जीवन के दोषों की उपेक्षा करके एक मात्र गुणों की ओर ही ध्यान देना गुणग्राही स्वभाव कहलाता है। किसी के गुण देखकर खुश होना अच्छी बात कहलाती है। किसी के पास गुणग्राही दृष्टि है ऊंचाई में उड़ने वाले गिद्ध को मुर्दा नजर आ जाता है। सूप अनाज को ग्रहण कर घास को उछाल देता है। गुण दृष्टि वाला सदैव खुश रहता है ।उसे हमेशा अच्छा ही दिखाई देता है।

आचार्य ने कहा कि खान से निकला सामान्य पत्थर भी भगवान का रूप ले लेता है। उसका कारण पत्थर की सहनशीलता है। शिल्पकार उस पर हथोड़े छैनी से लगातार वार करता रहता है मार सहन कर वह प्रतिमा का आकार ग्रहण कर लेता है। कच्ची केरी गर्मी को सहन कर ही आम बनती है।

आग की तपन सहन कर मिट्टी घड़ा बनती है। सज्जन पुरुष का स्वभाव सहनशील होता है। शारीरिक दुखों को सहन करना, किसी के व्यंग्यबाणों को सहन करना, अपमान का प्रतिकार नहीं करना सज्जन पुरुष के लक्षण है। सहन करने वाला साधु कहलाता है। इसलिए उसे क्षमश्रमण कहलाते हैं।

परिषह व उपसर्गों को समतापूर्वक सहन करने के लिए साहसिक स्वभाव भी जरुरी है। साधना मार्ग में आने वाले कष्टों को सहन करने की शक्ति जिसके पास है वह कष्टों से नहीं घबराता।

सद्गुरू की संगत से मिलता है ज्ञान

कोयम्बत्तूर. जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि मोमबत्ती कितनी भी संख्या में रखी हों लेकिन उपयोगी नहीं है , पर ज्योति के संग होते ही वह अंधेरे को दूर कर देती हैं। इसी प्रकार जीवात्मा का परमात्मा या सद्गुरू के साथ संग होते ही कितना ही अज्ञानी व्यक्ति हो उसे अपार ज्ञान मिल सकता है।

आचार्य शनिवार को आरएसपुरम स्थित राजस्थानी संघ भवन में बहुफणा श्वेतांबर जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में आयोजित चातुर्मास धर्मसभा में प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने कहा कि गुरू कृपा में दुनिया की हर शक्ति व समृद्धि प्राप्त करने की ताकत है। लेकिन पूर्ण भाव से समर्पण की आवश्यकता है।

समर्पण से अष्ट सिद्धि व नौ निधि चलकर खुद आती हैं। आचार्य ने कहा गुरू के प्रति सर्वाधिक विनय का आदर्श भगवान महावीर के प्रथम शिष्य गौतम स्वामी थे। महावीर का संग मिलने से पहले गौतम स्वयं को परम ज्ञानी मानते थे। भगवान महावीर के पास भी वह अभिमानी बन कर उनसे वाद कर उन्हें हराने आए थे लेकिन जब महावीर के सामने उन्हें अपनी शंका का समाधान मिला तो उन्होंने प्रभु को सर्वज्ञ मानते हुए अपना जीवन समर्पण कर दिया। वह छोटे बालक की तरह महावीर को समर्पित थे।

कोयम्बत्तूर में शनिवार को धर्मसभा में प्रवचन सुनती श्राविकाएं।

आचार्य ने बताया कि विनय व समर्पण भाव से गौतम स्वामी ने अनेक उपलब्धियां प्राप्त की। फिर भी वह परमात्मा के वचनों को उत्सुकता से सुनते थे। मन के संकोच व संदेह को भी प्रभु से उत्तर पाकर संतुष्ट होते थे। गुरू कृपा के बल से वह जिस भी शिष्य को दीक्षा देते थे उसे अल्प काल में ही केवल ज्ञान प्राप्त हो जाता था। उन्होंने कहा कि गौतम नाम भी शक्ति का रूप है।

गौ अर्थात कामधेनु गाय से भी अधिक, त अर्थात तरु वह कल्पतरु से भी अधिक तथा म अर्थात मणि वह चिंतामणि से भी अधिक शक्तिशाली थे।कामधेनू गाय, कल्पतरु व चिंतामणि से तो मात्र इच्छाओं की पूर्ति होती है जबकि गौतम इच्छाओं से मुक्त कर देते थे। गौतम से हमें विनय गुण की प्रेरणा लेनी चाहिए।

आज विशेष कार्यक्रम

रविवार सुबह 9 बजे राजस्थानी संघ भवन में 'जब प्राण तन से निकले' विषय पर चेन्नई के मोहन व मनोज की ओर से भाववाही कार्यक्रम की प्रस्तुति दी जाएगी। 22 जुलाई से मंगलकारी सिद्धि तप शुरू होगा।

जन्म ही नहीं, संस्कार भी देते हैं माता-पिता

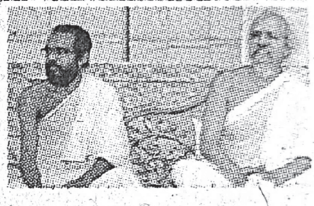

कोयम्बत्तूर. आचार्य विजयरत्नसेन सूरीश्वर ने कहा कि माता-पिता सिर्फ जन्म ही नहीं, संस्कार भी देते हैं। जन्मा हुआ बालक पशुवत अज्ञानी होता है। उसके दो ही काम होते हैं। खाना और सो जाना। इस बालक को सज्जन मनुष्य बनाने का कार्य माता -पिता ही करते हैं।

उन्होंने रविवार राजस्थानी संघ भवन में धर्मसभा में युवाओं के जीवन के उत्कर्ष के लिए माता-पिता के उपकार व कर्तव्य विषय पर प्रवचन में यह बात कही। उन्होंने कहा कि पशु व मनुष्य में सबसे बड़ा अंतर परिवर्तन है।

पशु मरण तक पशु ही रहता है लेकिन मनुष्य के जीवन में परिवर्तन आते रहते हैं। मनुष्य जीवन में शैतान, पशु, सज्जन व देवता बन सकता है।

आचार्य ने कहा कि मात्र जन्म देना व उसे भोजन उपलब्ध कराना ही पर्याप्त नहीं है, यह कार्य तो पशु-पक्षी भी करते हैं लेकिन सच्चे माता-पिता वे हैं जो संतान की आत्म हित की चिंता करते हैं। माता-पिता के उपकारों को नहीं चुकाया जा सकता। उन्होंने कहा कि कुछ संतानें माता-पिता के पास धन-वैभव होने तक उनकी सेवा करते हैं और फिर भूल जाते हैं। कुछ संतानें माता-पिता को वृद्धाश्रम में छोड़ देते हैं।

लेकिन, उत्तम मनुष्य जीवन पर्यंत माता-पता की सेवा करते हैं। जो व्यक्ति धन व लालच की आशा करते हैं वह पाप समान है। जिसने जीवन में माता-पिता व गुरूओं का आशीर्वाद लिया उसके सभी कार्य सरल हो जाते हैं। पश्चिमी संस्कृति के अंधानुकरण के कारण जीवन में स्वार्थवृत्ति बढ़ रही है। उन्होंने कहा कि वृद्धाश्रम भारतीय संस्कृति के लिए कलंक है। प्रत्येक व्यक्ति का दायित्व है कि आजीवन माता-पिता की सेवा करे तथा उनके दिए संस्कारों का प्रत्योपकार करे। प्रवचन के बाद कर्म ग्रंथ भाग एक के तीसरे संस्करण का विमोचन किया गया।

इस मौके पर मांगीलाल परमार, रमेश बाफना, भाग्यवंती देवी, मीठालाल जैन, दिनेश आदि उपस्थित थे। गुलाब जैन ने सभा का संचालन किया।

साधना को नष्ट कर देती है क्रोध की अग्नि

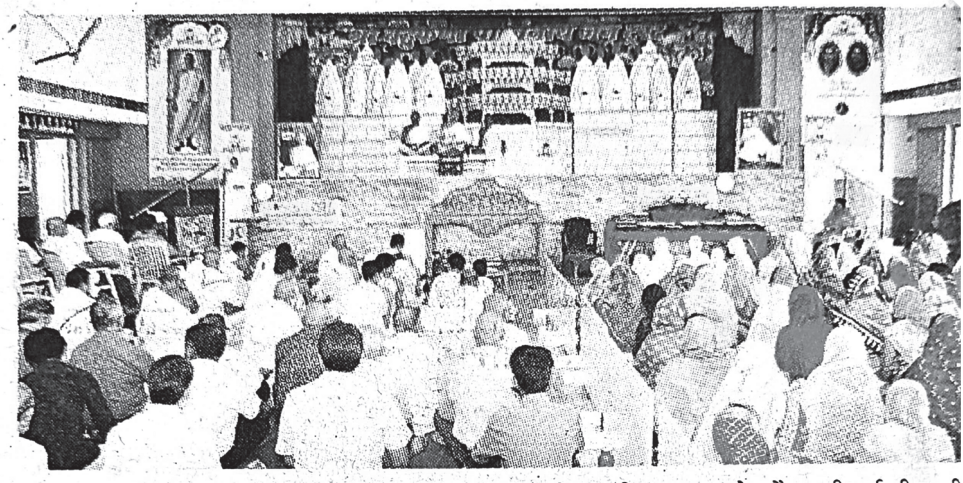

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. जैनाचार्य विजय रत्सेन सूरीश्वर ने राजस्थानी संघ भवन में पर्युषण प्रवचन माला के तहत मंगलवार को महापर्व के कर्तव्य बताए।उन्होंने कहा कि आत्मा का मूल स्वभाव है शांत रहना, लेकिन क्रोध की अग्नि आत्मा की समस्त साधना को भस्म कर देती है।

आचार्य ने कहा कि तप और त्याग से आत्मा का ऊर्ध्वगमन होता है।फिर भी जब तप -त्याग का अजीर्ण होता है तब क्रोध का आवेश बढ़ जाता है।क्रोध में व्यक्ति के विवेक रुपी अंतर चक्षु बंद हो जाते हैं। एक तरह से वह अंधा हो जाता है।क्रोध के अन्य कारण अभिमान पर चोट ,इच्छाओं का पूरा नहीं होना व विफलता है। इन कारणों से पैदा हुआ क्रोध व्यक्ति को हत्या और आत्महत्या करने पर में मजबूर कर देता है।क्रोध के आवेश में व्यक्ति को कुछ नहीं सूझता और वह अपने माता-पिता और वरिष्ठ जनों का भी अपमान करने लग जाता है।

उन्होंने कहा कि क्रोध के कारण आत्मा अपनी सद्गति को हार जाती है। वर्षो तक निष्पाप संयम जीवन का पालन करने वाला क्रोध के कारण अपनी सारी साधना को हार जाता है।

आचार्य ने कहा कि क्रोध की आग से बचने के लिए हमें अपने कर्म की स्थिति का विचार करते हुए अपनी भूल देखनी चाहिए। सामान्यतया हर प्रसंग में हम दोष तो अन्य का देखते हैं और गुण मात्र अपने ही।

इसी के कारण हम अपने क्षमा भाव से हार जाते हैं।क्रोध के प्रसंगों में क्षमा भाव रखना कठिन है परन्तु प्रयत्न और पुरुषार्थ से हम अपने क्षमा भाव को हार जाते हैं।

उन्होंने कहा कि पर्युषण के पांच कर्तव्यों में पारम्परिक क्षमापना का भाव सबसे महत्वपूर्ण है।जो अपने बैरी के साथ भी क्षमा भाव धारण कर माफी मांगता है और अन्य को माफकर देता है वह ही धर्म की सच्ची आराधना कर सकता है। आचार्य ने कहा कि अहिंसा की उद्घोषणा ,साधार्मिक वात्सल्य ,पारम्परिक क्षमापना के साथ अठ्ठम तप और चैत्य परिपाटी के कर्तव्यों का भी पालन विशेष रुप से इन पर्युषण महापर्व के दिनों में करना चाहिए।

आगम सूत्र के अनुसार वर्ष भर में हुए पापों की शुद्धि करने के लिए अठ्ठम तप के स्वरूप तीन उपवास अथवा छह आयंबिल, 12 एकासना, 24 विद्यासना अथवा 600 गाथाओं के स्वाध्याय से आलोचना की शुद्धि करनी चाहिए।

साथ ही गांव-शहर में अधिक से अधिक जिन मंदिरों के दर्शन करने चाहिए।परमात्मा के दर्शन करने पर हमें हमारी आत्मा में रहे परमात्म स्वरूप का ज्ञान होता है।

29 अगस्त से सुबह नौ बजे से ग्रंथ शिरोमणि श्री कल्पसूत्र का वाचन व् प्रवचन होंगे। 30 अगस्त को भगवान महावीर स्वामी जन्म वाचन होगा।

आहार का असर तन के साथ मन पर भी

कोयम्बत्तूर. मानव अन्य प्राणियों की अपेक्षा विकसित व श्रेष्ठ है। सोचने व समझने के लिए मन व बुद्धि है। बुद्धि के बल से भविष्य के हित व अहित पर विचार कर सकता है। किसी भी कार्य को शुरू करने व उसके परिणाम की गहराई तक सोचने की शक्ति मनुष्य में होती है। आहार के अनुसार भी वह सोच-समझ सकता है। यह बात जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कही। वे रविवार को बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट की ओर से चल रहे चातुर्मास कार्यक्रम के तहत कोजी टावर में आहार क्यों और कैसे - विषय पर संबोधित कर रहे थे। उन्होंने कहा कि मनुष्य के पास विवेक की शक्ति होती है जिसके आधार पर वह आचरण भी कर सकता है। पशु पक्षियों का जीवन वर्तमान जीवी होता है ।वे आगे पीछे की नहीं सोच सकते। उन्हें तो कौनसा भोजन खाने योग्य नहीं है इसका भी अनुमान नहीं होता। विवेक नहीं होने से उनके सामने कुछ भी वस्तु डालेंगे वह मुंह मार

देंगे। मानव आहार के क्षेत्र में विवेक के चक्षु का इस्तेमाल कर सकता है। उसके सामने कुछ भी रखने पर वह विवेक के आधार पर निर्णय करता है। उन्होंने कहा कि जो भी हम खाते हैं ।उसके गुण धर्मों का असर मन, चित्त विचारों पर हुए बिना नहीं रह सकता।

उन्होंने कहा कि कुछ लोग कहते हैं भोजन का संबंध शरीर से है आत्मा से नहीं। भोजन का शरीर पर प्रभाव पड़ता है इसका उदाहरण मदिरा है। किसी को मदिरा पिलाने पर उसका शरीर वश में नहीं रहता। विवेकशील प्रवृत्ति नष्ट हो जाती है। वह कुछ भी बोलने लगता है। दूसरी ओर बुद्धिवर्धक वस्तु का उपयोग करने का परिणाम भी स्पष्ट नजर आता है। कहावत भी है जैसा खाए अन्न वैसा हो मन। किशोर भाई ने तमिल भक्तों के लिए प्रवचन को तमिल भाषा में भी समझाया। इससे पहले चंद्रप्रकाश, कमलेश मेहता, रेणु देवी श्रीश्रीमाल ने आचार्य की अगवानी की। 24 सितम्बर से वर्धमान तप प्रारंभ होगा।

उपदेश कल्पवल्ली ग्रंथ का वाचन

पत्रिका न्यूज़ नेटवर्क
rajasthanpatrika.com

कोयम्बत्तूर. बहुफणा पार्श्वनाथ जैन ट्रस्ट के तत्वावधान में राजस्थानी संघ भवन में आयोजित चातुर्मास में जैन आचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने बुधवार को 'उपदेश कल्पवल्ली' ग्रंथ का वाचन व प्रवचन प्रारंभ किया।उन्होंने बताया कि ग्रंथ के लेखक वाचकवर्य इंद्र हंस हैं। आचार्य ने बताया कि इसके मूल ग्रन्थ में पांच गाथाएं है।

इन गाथाओं में श्रावक जीवन के 36 कर्तव्यों को बताया गया है। ग्रंथ के प्रथम चरण में पहले तीर्थंकर आदिनाथ प्रभु का स्मरण है। उन्होंने बताया कि आदिनाथ प्रभु ने भारत में जैन शासन की स्थापना कर धर्म के विरह को दूर किया। 24 तीर्थंकरों में से सर्वाधिक केवली पर्याय आदिनाथ प्रभु की है। इसके बाद महावीर, गौतम आदि को याद किया जाता है। इनके बाद धर्महंस व सम्यगज्ञान की अधिष्ठात्री सरस्वती का स्मरण किया गया।

कोयम्बत्तूर में बुधवार को चातुर्मास के दौरान उपदेश कल्पवल्ली ग्रंथ का वाचन करते आचार्य विजय रत्नसेन।

जिनवाणी का श्रवण

आचार्य ने बताया कि तारक तीर्थंकर परमात्मा के माध्यम से जगत के जीवों का उपचार करते हैं जिस समय अरिहंत परमात्मा समवसरण में समस्त जीवों को धर्मोपदेश रहे थे उस समय हमारी आत्मा कहां थी, पता नहीं जिनवाणी सुनी या नहीं पता नहीं। सौभाग्य से परमात्मा की उस वाणी को गणधर भगवंतों ने सूत्र के रूप में गूंथा और उन्हीं आगम सूत्रों के अनुसार महर्षियों ने ग्रंथों की रचना की। यह जरुर है कि उन महर्षियों या महापुरुषों ने संस्कृत व प्राकृत भाषा का इस्तेमाल किया लेकिन लोग इन भाषाओं के जानकार नहीं होने से ग्रंथों का रसास्वादन नहीं कर पाए। वर्तमान में संस्कृत के जानकार बहुत कम हैं जिससे हम अपनी भाषा को भूल गए।

आचार्य ने कहा कि महापुरुषों ने हमारे उपकार के लिए कठोर श्रम करने के बाद जिस संस्कृत प्राकृत साहित्य का सृजन किया वह हमारे लिए भैंस के आगे भागवत बांचने के समान बेकार हो गया।

विश्वास के आधार पर चल रहा जीवन

कोयम्बत्तूर. जैनाचार्य विजय रत्नसेन सूरीश्वर ने कहा है कि संसार का सारा व्यवहार विश्वास के आधार पर चलता है। जीवन में हम कदम -कदम पर अनेक व्यक्ति और वस्तुओं पर विश्वास करते हैं।श्वांस से भी अधिक विश्वास के आधार पर जीवन चल रहा है। आचार्य बुधवार को राजस्थानी संघ भवन में प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने कहा कि विमान या रेल में सफर करने वाला कभी चालक से नहीं मिलता। सीधा अपनी सीट पर जाकर बैठ जाता है। वाहन चालक कितना शिक्षित है, या उसे वाहन चलाने का कितना अनुभव है । कोई देखने नहीं जाता।

कोयम्बत्तूर के राजस्थानी संघ भवन में बुधवार को प्रवचन सुनती श्राविकाएं।

उन्होंने कहा कि बाजार की दुकान या ठेले पर मिलने वाली खाद्य सामग्री या फिर अन्य वस्तुओं को बिना किसी शंका के उपयोग करते ही हैं। कोई उनकी जांच लेबोरेट्री में कराने नहीं जाता। इसका आधार विश्वास ही है।

उन्होंने कहा कि बालक के जन्म पर बालक का सम्बन्ध सिर्फ माता से होता है। वह मात्र अपनी माता को ही पहचानता है।पिता -भाई व अन्य परिजनों से सम्बन्ध का ज्ञान उसे माता के विश्वास से होता है।

शिक्षक भी विद्यार्थी को जो ज्ञान देता है, उस पर वह आंख मूंद कर विश्वास कर लेता है। कभी तर्क नहीं करता कि दो और दो चार ही क्यों होते हैं।पांच क्यों नहीं। माता -पिता भी अंजान ऐसे शिक्षकों को अपने बच्चों को ज्ञानाभ्यास के लिए सौंप देते हैं।

आचार्य ने कहा कि जैसे जीवन के हर व्यवहार पर विश्वास जरूरी है, वैसे ही आत्मा के विकास स्वरुप धर्म की आराधना में भी परमात्मा के वचनों पर पूर्ण रुप से विश्वास जरूरी है।उन्होंने कहा कि मकान का फर्नीचर ,रंग साज-सज्जा कितनी ही शानदार हो पर अगर मकान की नींव कमजोर हो तो उसमें कोई रहना पसंद नहीं करेगा। क्योंकि वह कभी भी जानलेवा हो सकता है। वैसे ही परमात्मा के वचनों पर पूर्ण विश्वास करना होगा , नहीं तो व्रत नियमों का पालन, दान-पुण्य बेकार है।

आचार्य ने कहा कि दुनिया में अधिकांश लोग मात्र संज्ञा प्रधान है। वे व्यवहार व धर्म के कार्य भी मात्र देखा-देखी या बिना सोचे -विचारे करते हैं।कुछ पढ़े- लिखे लोग प्रज्ञा प्रदान होते हैं। हर विषय पर तर्क वितर्ककरके जो बातें उसके दिलो दिमाग में सिद्ध हो ,उसे ही स्वीकार करते हैं।

अतिन्द्रिय तत्वों पर उसे कभी भी विश्वास या स्वीकार नहीं होता।लेकिन ऐसे भी लोग खूब हैं जो श्रद्धा प्रधान होते हैं।अपना जीवन परमात्मा की आज्ञा के अनुसार जीने की कोशिश करते हैं।आचार्य ने कहा कि वर्तमान में लोग श्रद्धा जीवी की जगह बुद्धि जीवी बने हैं।श्रद्धा प्रधान ही अपनी आत्मा का कल्याण कर्ने में समर्थ बन पाते है। इसलिए श्रद्धा जीवी बनने का विशेष प्रयास करना चाहिए। राजस्थानी संघ भवन में 28 जुलाई से प्रत्येक रविवार को युवाओं के लिए संस्कार शिविर सुबह नौ बजे शुरु होगा। पहले रविवार को होने वाले शिविर का समय माता-पिता के उपकार और कर्तव्य हैं। संघ भवन में रोजाना सवा नौ बजे चातुर्मास प्रवचनों का आयोजन हो रहा है।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न, पू.आ. श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 245 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	42.	मोक्ष मार्ग के कदम	120/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	43.	विविध देववंदन	100/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	44.	संस्मरण	50/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	45.	भव आलोचना	10/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	46.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-
6.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-	47.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-
7.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	48.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
8.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	49.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
9.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	50.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
10.	विविध-तपमाला	100/-	51.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
11.	विवेकी बनो	90/-	52.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	53.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
13.	आओ श्रावक बनें !	25/-	54.	नमस्कार मीमांसा	150/-
14.	व्यसन-मुक्ति	100/-	55.	परमेष्ठि-नमस्कार	180/-
15.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	56.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-
16.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	57.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
17.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	58.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
18.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	59.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
19.	समाधि मृत्यु	80/-	60.	वैराग्य-वाणी	140/-
20.	Pearls of Preaching	60/-	61.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	160/-
21.	New Message for a New Day	600/-	62.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-
22.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	63.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	240/-
23.	अमृत रस का प्याला	300/-	64.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
24.	ध्यान साधना	40/-	65.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
25.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-	66.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
26.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-	67.	मन के जीते जीत है	80/-
27.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-	68.	प्रात: स्मरणीय महापुरुष भाग-1	300/-
28.	प्रेरक-प्रवचन	80/-	69.	प्रात: स्मरणीय महापुरुष भाग-2	300/-
29.	जीव विचार विवेचन	100/-	70.	प्रात: स्मरणीय महासतियाँ भाग-1	280/-
30.	नवतत्त्व विवेचन	110/-	71.	प्रात: स्मरणीय महासतियाँ भाग-2	300/-
31.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	72.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
32.	लघु संग्रहणी	140/-	73.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
33.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-	74.	वैराग्य-शतक	140/-
34.	कर्मग्रन्थ (भाग-1)	160/-	75.	आनन्दघन चौबीसी विवेचन	200/-
35.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-	76.	धर्म-बीज	140/-
36.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-	77.	45 आगम परिचय	200/-
37.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-	78.	नित्य देववंदन	निशुल्क
38.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-	79.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
39.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-	80.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
40.	गणधर-संवाद	80/-	81.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	150/-
41.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-	82.	दक्षिण भारत प्रवचन	160/-

Kamal PRINTERS M. 9820530299

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 8484848451 (only whatsapp)